किशोरियों
का
मानसिक विकास

किशोरियों का मानसिक विकास

आशारानी व्होरा

कितने माता-पिता, कितने अभिभावक हैं, जो कैशोर्य और तरुणाई के बीच के वय सन्धि-काल की समस्याओं और अपेक्षाओं को समझते हैं? जहाँ माताएँ समझदार हैं, सुलझे व्यक्तित्व वाली हैं, अपनी किशोरी बेटियों की इस उम्र की 'समझे जाने की चाह' को राह दे पाती हैं, उन्हें आत्मीयता से अपने इतने निकट रख पाती हैं कि वे अपने उलझे मन की भीतरी समस्याओं और आज के जटिल परिवेश की बाहरी कठिनाइयों-परेशानियों को लेकर उनसे अपना मन खोल सकें, समय पर उनसे सही सलाह और संरक्षण पा सकें, वहाँ प्राय कोई समस्याएँ नहीं उठतीं। उठती हैं, तो उनका समाधान भी आसानी से निकाल लिया जाता है। घर की इज्जत, लड़की की अस्मिता खतरे में नहीं पड़ती और देश, समाज की आशाएँ हमारी ये किशोरियाँ अपना व्यक्तित्व संवारने, अपना भविष्य बनाने में समर्थ हो, सफल-सार्थक नागरिकता की हकदार बन जाती हैं।

सरल भाषा व रोचक शैली में किशोरियों की इन्हीं आकांक्षाओं-अपेक्षाओं, अभिभावकों की इच्छाओं-आशाओं और भावी पीढ़ी की उज्ज्वल सम्भावनाओं को लक्ष्य में रखकर इस पुस्तक की रचना की गयी है।

इस पुस्तक की प्रेरणा के पीछे मेरा विभिन्न पत्रिकाओं के पाठकीय समस्या-स्तम्भों के संचालन व किशोर पीढ़ी की समस्याओं के समाधान का २० वर्ष का व्यापक अनुभव है। यह सामग्री इसके पूर्व कई किस्तों में दैनिक 'पंजाब केसरी' के सोमवासरीय महिला संस्करण में धारावाहिक छप चुकी है और वह लेखमाला पाठकों द्वारा बहुत सराही गई थी, जिसके लिए मैं सम्पादक 'पंजाब केसरी' की बहुत आभारी हूँ। इससे किशोरियाँ और उनकी माताएँ समान रूप से लाभान्वित हो सकेंगी, इसी आशा के साथ पुस्तक आपके हाथों में—

सी ६ बी/एम आई. जी. फ्लैट्स, —आशारानी व्होरा
मायापुरी, नयी दिल्ली-११० ०६४

उफ ! यह रोक-टोक, यह घुटन !

सता की बात

ओह ! बरसात की ये हल्की-हल्की फुहारें। लीना कहती है, उसे इन फुहारों में भीगना बहुत अच्छा लगता है। मैंने भी आज भीगकर देखा। पर कपड़े भीगे, तन भीगा, मन तो नहीं भीगा ! कवियों ने इस मौसम के न जाने कितने रंगीन चित्र खींचे हैं। कभी-कभी खिड़की में बैठकर मुझे भी यह इन्द्रधनुषी रंग देखना अच्छा लगा है। चाहा, घंटों बैठकर देखा करूँ। पर नहीं, जल्दी ही मन उचट गया।

लीना कहती है, 'कैसी हो तुम सता ! ये ठंडी हवाएँ, यह हरियाली !' पर मैं क्या करूँ ? मुझे तो बरसात एकदम नापसंद है। चारों ओर कीचड़, पानी और गंदगी। वातावरण में एक अजीब घुटन और सीलन। घटाओं का मन भी जैसे घिरा-घुटा। बादलों की आँखें बरस-बरस पड़ने को आतुर। मन भरा-भरा-सा, पर कितना बोझिल और उदास। पता नहीं, यह गंदा मौसम लोगों को कैसे अच्छा लगता है ?

पर लीना को अच्छा लग सकता है। कितना साफ-सुथरा, सजा-सँवरा घर है उसका ! हर चीज अपनी जगह पर ठीक-ठाक। उसके घर की तरतीब को मैं तो देखती ही रह जाती हूँ। छोटे भाई-बहन भी कितने शिष्ट और सलीकेदार ! और मम्मी ! ओह, लीना की मम्मी तो मुझे कितनी अच्छी लगती हैं, यह मैं बयान ही नहीं कर सकती। हमसे बात करती हैं तो लगता है, जैसे मम्मी नहीं, सहेली हों। तभी तो लीना के मजे हैं। जो चाहे कर सकती है। जैसे चाहे रह सकती है। न रोक, न टोक।

एक हमारा घर है ! गन्दगी और फूहड़पन का मनमाना राज। किसी सहेली को घर लाने को मन नहीं करता। न ढंग की बैठने की जगह, न

ढंग का फर्नीचर। कभी दो सहेलियाँ आ ही जाएँ तो हँसने-बोलने की आवाज़ से पिताजी की भवें तन जाती हैं। माँ चाय भेजेंगी तो बेढंग प्लेट-प्याले और ठंडी-गुनगुनी चाय। मन टूटकर रह जाता है। कोई पूछे, इतना बड़ा घर है तो एक कमरा भी ढंग से सजाया नहीं जा सकता? कहो, तो माँ कहेंगी, 'हमें अमीरों की नकल नहीं करनी है।' जब मैं कहती हूँ, क्या सीमा के डैडी पिताजी से ज्यादा कमाते हैं? तो उनका उत्तर होगा, 'झूठी शेखी में क्या रखा है, हमसे दिखावा नहीं होता।' बस मैं घुटकर रह जाती हूँ। भला इसमें अमीरी या दिखावे की क्या बात है? यह तो सुघड़ व्यवस्था और नये तौर-तरीकों की बात है। अपनी समझ की या सूझबूझ की ही बात है। हमारी आय भी इतनी कम तो नहीं कि हम ढंग का कुछ भी नहीं कर सकते? पर कोई जरूरत महसूस करे तब तो!

चलो, यह भी मान लें कि माँ अनपढ़ हैं। पुराने विचारों की हैं। इसलिए उन्हें रहन-सहन का सलीका नहीं आता। अक्सर मैं ऐसा कहकर सहेलियों को समझा देती हूँ। पर हँसने-बोलने पर रोक क्यों? क्या पुराने लोग हँसी-मज़ाक भी नहीं करते थे? एक-दूसरे को समझने की कोशिश भी नहीं करते थे? दूसरों के घर देखती हूँ तो पता नहीं क्यों सब अच्छा-अच्छा लगता है। कितने अपनेपन और प्यार से वे बोलते हैं! छोटे भाई-बहन कितनी सभ्यता से पेश आते हैं। दिल खोलकर बातचीत। हँसी-मजाक। उन्मुक्त वातावरण। न तनाव, न झुँझलाहट। न कटुता, न संदेह। देखकर तबीयत खुश हो जाती है। अपनी उन सहेलियों के परिवारों से मन-ही-मन ईर्ष्या करने लगती हूँ। कितनी-कितनी बातें लेकर घर लौटती हूँ, 'यह करूँगी, वह करूँगी,' पर घर आते ही सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता है। मन पहले उबलता है, फिर घुटते हुए उसमें धुआँ भरकर रह जाता है।

आते ही प्रश्नों की बौछार! 'कहाँ इतनी देर लगी?' 'क्यों लगी?'—सिर से पैर तक मेरा ऐसे निरीक्षण, जैसे मैं कोई अपराधी होऊँ। अपने ऊपर उनकी घूरती नजरें देखकर ही मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम होने लगती है। बटोरा हुआ सारा साहस जवाब दे जाता है। जिन बातों को सारे रास्ते मन में दुहराती आती हूँ, वे सारी-की-सारी भूल

जाती हूँ। या तो मैं जवाब ही नहीं दे पाती और नजरें झुकाकर अपनी दृष्टि में स्वयं ही अपराधिनी हो उठती हूँ या फिर कुछ-का-कुछ अटशट बोल जाती हूँ। फिर सुनने को मिलता है, 'दिनोंदिन उद्दण्ड और मुँहफट होती जा रही है। इसकी पढ़ाई, बाहर निकलना सब बन्द कर दो।' और मैं सिर से पैर तक काँपकर वहाँ से हट जाती हूँ। बाहर की रोशनी भीतर गुम होने लगती है। फिर वैसा ही अँधेरा मन में उतरने लगता है। अँधेरा, जैसे बादलों का घटाटोप। एक बरसात बाहर—कभी उमस, कभी गड़-गड़ाहट, कभी टप-टप और चारों ओर कीचड़, गन्दगी। एक बरसात भीतर—घुटन और सीलन और ···।

मन को जैसे-तैसे थामती हूँ तो माहौल में तूफान के बाद की शान्ति पाती हूँ। एक सहम। एक चुप्पी, जिसे तोड़ने के लिए फिर शुरू होती है, उपदेशों की टकार 'तुम्हारी यह सहेली अच्छी नहीं। बहुत फैशन करती है। बाजार घूमती है। उसके साथ तुम्हारा बैठना-उठना ठीक नहीं।' न जाने उसकी माँ भी कैसी है जो लड़की को इतनी छूट देकर बेफिक्र बैठी है ! यहाँ तो तुम्हें जरा-सी देर हो जाए तो हमारे प्राण सूखने लगते हैं।' ··· और न जाने क्या-क्या।

खूब ! इन्हें मेरी बहुत चिन्ता है और लीना की मम्मी को लीना की बिल्कुल चिन्ता नहीं। बहुत खूब ! क्या कहने ! वही लीना, जिसके भाग्य से मुझे ईर्ष्या है, जिसकी मम्मी को देखकर मुझे लगता है, मैं इनकी कोख से क्यों न पैदा हुई ! उन लोगों का सलीका, जिसे ये बिगाड़ने वाला फैशन कहते हैं, ये क्या जानें ! ओह ! ये कभी समझेंगे कि लीना क्या है, उसकी मम्मी क्या है और उनका घर-परिवार कैसा है ? नहीं। ये कभी नहीं समझेंगे। मुझे यों ही घुट-घुटकर मरना होगा। जी चाहता है, ऐसे घुटकर मरने से तो अच्छा है, आत्महत्या कर लूँ।

यह सब लीना से कभी कहने की कोशिश करती हूँ तो वह बात को हँसी में उड़ा देती है। कभी भी गम्भीरता से नहीं लेती। वह मेरी सहेली है, फिर समझती क्यों नहीं ? ·· ठीक तो है। वह क्यों समझेगी भला ! उसे क्या गम है ? उसने क्या यह सब देखा-भुगता है जो समझे ?

लीना और मुझमें कोई सामाजिक या आर्थिक स्तर का अन्तर नहीं।

सपने मन में संजोती हूँ! कैसी-कैसी कल्पनाओं से घिरी रहती हूँ! कितना अच्छा लगता है बाहर! कालेज में? नहीं, सबके बीच नहीं, सिर्फ अपनी सहेलियों के घर। या फिर लीना के साथ घूमते हुए। उसके बाद तो किस तरह निराशा के भँवर में डूबकर, टूटकर घर की देहरी पर पाँव रखती हूँ, यह मेरे सिवाय कौन जानता है?

देहरी! उस दिन लीना कह रही थी, 'घबराओ नहीं सुता, किशोरावस्था को लाँघकर तरुणाई की देहरी पर कदम रखते हुए यह सब होता ही है। लेकिन अकेले मेरे साथ ही क्यों? क्या लीना इसी उम्र से नहीं गुजर रही? क्या वह मुझसे ज्यादा समझदार है? शायद है। पर क्यों? क्या इसीलिए नहीं कि उसके घरवाले उसका साथ दे रहे हैं जबकि यहाँ?

यहाँ तो जैसे चारों ओर शत्रुओं के बाड़े में घिरी मैं अकेली जूझ रही हूँ। न जाने कब तक जूझना होगा? न जाने कब राह मिलेगी? राह या मुक्ति? यह भी तो नहीं जानती कि राह खोज रही हूँ या मुक्ति?

घर में भय। कालेज में भय। मन में भय। सब गलत-गलत नहीं होगा तो क्या होगा? जानती हूँ, मुझसे गलतियाँ होती हैं। कहना कुछ चाहती हूँ, कह कुछ जाती हूँ। पछताती हूँ, पर अगली बार फिर वैसा ही हो जाता है मुझसे। अपने पर वश क्यों नहीं रहा? मन में याद किया हुआ समय पर सब भूल क्यों जाती हूँ? सब बातें। सबक। पढ़ाई। लगता है, माँ की यह रोकटोक, पिताजी की डाँट और मेरे ये भय मुझे कहीं का नहीं छोड़ेंगे। पर इस तरह सिर पटकने से भी क्या होगा? कुछ करना चाहिए। क्या करूँ? कुछ सूझता भी तो नहीं!

हाँ, एक बात ध्यान में आ रही है। पता नहीं, पहले मेरा ध्यान इस बात पर क्यों नहीं गया? लीना मेरी सहेली है, निकट सहेली। पर मैं अभी उसे अन्तरंग सहेली क्यों नहीं बना पाई? यह क्या सहेली वाला बराबरी का रिश्ता है कि मैं उससे प्रभावित हो उसकी तरफ खिंचती रहूँ? उसकी प्रशंसा करती रहूँ? उससे ईर्ष्या करती रहूँ? और उसे लेकर मन-ही-मन हीन भाव से घिरती रहूँ? कहीं इसीलिए तो मैं बराबरी की चाह लिए भी उसकी बराबरी कर पाने में असमर्थ नहीं रह जाती? कहीं इसीलिए तो मेरी सारी हँसी-खुशी गायब नहीं हो जाती कि मैं लीना

जैसी नहीं बन सकती ? कुछ भी हो, एक बार अपना यह सारा हीनभाव झटककर सीना से खुलकर बात करूँगी। शायद सीना जानती है कि मैं उससे ईर्ष्या करती हूँ। फिर बात को खोलकर उसके सामने रख देने में क्या हर्ज है ? वह एक सुलझी हुई लड़की है। हो सकता है, अन्तरंगता पाकर वह मेरी उलझन सुलझाने में भी कुछ मदद कर दे!

मैं कल ही उससे पूछूंगी।

यह उम्र और ये ग़म !

लीना की बात

चलो, लीना खुली तो ! इस बेवकूफ लड़की को मैंने न जाने कितनी बार कुरेदा होगा कि कुछ खुलकर बोले, कुछ दिल खोले। पर नहीं। जब देखो, चेहरा लटका हुआ। आँखों के पपोटे सूजे हुए, जैसी अभी रोकर आ रही हो या रात-भर जागकर पढ़ती रही हो। रात-भर क्या, आधी रात तक या दो-तीन घंटे भी रोज जमकर पढ़ती तो क्या यूँ हर परीक्षा में पिछड़ती जाती ? और रोने का क्या काम ? हाँ, इस उम्र में रोने का क्या काम ? यही तो हँसने-खेलने की उम्र है। जी-भर सीखने की। मन

कोई प्रधानमन्त्री बना देता तो एक-एक को ठिकाने लगा देती। उन सब
भी, जिन्होंने चारों ओर भ्रष्टाचार फैला रखा है। और उन गुण्डों को
जिन्होंने अच्छे-भले लड़कों पर से भी हम लड़कियों का विश्वास उठा दि
है।

अरे, मैं कहाँ बहकने लगी? बात तो समय की कर रही थी न,
मन मे कितनी-कितनी योजनाएँ होती हैं और समय के अभाव में अधिक
धरी रह जाती हैं। और एक यह मूर्ख लता है जो बैठी-ठाली सोचती
रह जाती है। उसकी आँखें शून्य में न जाने क्या खोजती रहती है
मलीमनुस कभी तो खुलकर हँसती नजर नही आती। यों हर समय
साथ चिपकी रहेगी, पर जैसे ही हम चार-छह जने मिले और हँ
दिल्लगी शुरू हुई कि वह गधे के सींग-सी गायब। कई बार तो इतना
आया उसपर कि मैं क्यो इस 'बोर' को अपनी मित्र बनाए बैठी हूँ
झटक क्यों नही देती? पर वह कभी मुझसे लड़ी ही नहीं तो अलग
करती? मुझे उस पर तरस आ जाता है और वह मुझे ऐसे देखती
जाती है जैसे मैं न जाने किस स्वर्गलोक से उतरी हूँ। उसका यह तकि
कलाम, 'खुशकिस्मत हो भई' और फिर वही उदास, लटका चेहरा,
सारी दुनिया का गम इसी के सिर आ पड़ा हो। उसकी और मेरी प
स्थितियाँ भिन्न हो सकती हैं। पर इस उम्र मे इतनी चिन्ता, इत
उदासी, इतने गम का क्या काम? यह बात मैं कभी भी नही समझ पा

न आज ही समझ पाई। उसकी सारी करुणी दास्तान सुनने
बावजूद। ठीक है, लता की माँ पुराने विचारो की है। घर का रहन-सह
साफ-सुथरा व सलीकेदार नहीं। पर इसमें उसकी माँ की क्या गलती है
वह पिछले जमाने की है। उसे किसी ने पढ़ाया या ठीक से सिखाया नह
तो यह उसका कुसूर कैसे मान लिया जाए? लता तो नये जमाने की है
सबकुछ नये तरीके से चाहती है, तो इसके लिए माँ से ही सारी अपेक्ष
क्यो? वह खुद कुछ मेहनत क्यो नहीं करती? क्या कालेज से आने
— पर पढ़ने जाने के बाद कुछ समय लगाकर वह स्वयं घर को ठीक-ठा

करते बेहाल न हो जाएँ? छोटे भाई-बहन घर ठीक रखने में सहयोग करें या सलीके से रहें, इसके लिए भी लता को उन्हें कुछ समय देना चाहिए। जब मैं घर का काम करती हूँ तो कैसे बबलू-गुड्डी को साथ लगा लेती हूँ। उन्हें इसमें आनन्द आता है—समझते हैं, 'हम भी कुछ हैं'। मेरा काम हल्का हो जाता है और वे सीख जाते हैं।

ठीक है, मेरी मम्मी पढ़ी-लिखी हैं और लता की माँ से ज्यादा समझदार हैं, फिर भी क्या हमें घर में रोक-टोक नहीं मिलती? काम बिगाड़ने या गलती करने पर झिड़कियाँ नहीं खानी पड़तीं? देर से लौटने पर देरी का कारण नहीं बताना पड़ता? हाँ, यह बात जरूर है कि मम्मी हमें किसी के सामने नहीं टोकतीं। मेरी सहेलियों के सामने मेरी बात रख लेती हैं फिर बाद में समझा देती हैं कि मैंने कहाँ गलती की, क्या ठीक किया। यह सब वे हमें सिखाने के लिए ही तो करती हैं, वर्ना हमें इस उम्र में हर बात की समझ थोड़े ही है!

बहुत-सी बातें समझ में नहीं आतीं। कई बातों में तो मन उलझकर रह जाता है। सोचती रहती हूँ, मम्मी से पूछूं कि नहीं? फिर पूछकर ही चैन मिलता है। वह 'गाइड' कर देती हैं तो लगता है, अरे यह तो कोई बात ही नहीं थी। बेकार में ही मैं उलझती रही। इसीलिए अब मैं बाहर की हर बात मम्मी को आकर बता देती हूँ। मेरा मन हल्का हो जाता है। मुझे राह मिलती है और मम्मी भी बाहरी दुनिया के बारे में बहुत-कुछ जान जाती हैं। उनके जमाने की बात और थी, आज की और है। अपनी इस उम्र में जब वे बाहर ही कम निकल पाती थीं, तो उनके सामने आने वाली समस्याएँ और थीं, आज और हैं। इसीलिए उनके उस उम्र के सोचने में और हमारे आज के सोचने में भी अन्तर है। अगर हम उनसे बाहर की बातें न करें या उन्हें कुछ न बताएँ तो उन्हें यह फर्क मालूम कैसे होगा? वैसे मेरी मम्मी ने कुछ समय नौकरी भी की थी, पर कुछ समय ही तो! बाद में पापा के कहने पर वह भी छोड़ दी। हाँ, मेरी मम्मी काफी कुछ पढ़ती जरूर रहती हैं। पर पढ़ने की बात और है, व्यवहार में जानने की और।

लता से जब मैंने यह सब कहा तो उसने मुझे यूँ देखा, जैसे मैं कुछ

ठी नहीं आ रहा था। यह बात उसे एकदम नई लगी कि माँ ही अपने अनुभव से हमें नहीं सिखाती, हम भी बाहर की नई जानकारियाँ देकर उन्हें सिखा सकती हैं। ऐसा नहीं करेंगे तो उन्हें अपने साथ चलाएँगे कैसे? वे हमारे सोचने के ढंग या हमारी नई जरूरतों को जान ही नहीं पाएँगी, तो हमारे साथ सहयोग कैसे करेंगी? मूर्ख लता को यह भी समझाना पड़ा कि अभी से तुम माँ को साथ लेकर नहीं चलोगी, उन्हें नए युग की, बदले समाज की नई बातें बताकर तैयार नहीं करोगी तो आगे चलकर वे तुम्हारी पसन्द के विवाह में भी रोड़ा अटकाएँगी। तब सिवाय सिर पटकने के तुम कुछ भी नहीं कर पाओगी।

मुझे लगा, जैसे बात लता के मर्म को छू गई थी। उसकी आँखों में चमक बढ़ती जा रही थी। चेहरे पर एक रंग आ रहा था, एक जा रहा था। परिवर्तन का संकेत पाकर मैंने उसे यह भी कह दिया कि अब यह हीनभाव और झिझक छोड़ो। स्वयं में आत्मविश्वास लाओ और लड़कों से भी खुलकर मिलो-जुलो। वे कोई हौवा नहीं हैं, जो तुम्हें खा जाएँगे। यह भी कोई बात हुई कि जहाँ चार जनों में चर्चा चली, कोई हँसने-खेलने की बात चली कि वह सिमट ली। क्या हम हर समय पढ़ते और काम ही करते रहें? स्वयं को तरोताजा रखने के लिए हँसें-खेलें नहीं? मनोरंजन-गोष्ठियों से नई ताजगी ही नहीं मिलती, नई-नई जानकारियाँ भी मिलती हैं। इस तरह अलग-थलग रहकर या कुंठित होकर हम क्या सीख पाएँगी भला? फिर जिन्दगी केवल कठिनाइयों से भरी हुई भी नहीं है, उसके अपने मज़े भी हैं।

क्या ? अपना ही नुकसान किया न ? कुंठा, हीनता, अकेलापन, स्वयं का
आक्रोश ! पढ़ाई में पिछड़ गईं। सामाजिक जीवन में पिछड़ गईं। अपना
स्वास्थ्य बिगाड़ लिया। अपना स्वभाव खराब कर लिया। क्या इसमें
तुम्हारा वातावरण ठीक हो गया ? उल्टे तुमने माँ को इतना चिढ़ा दिया
कि दुखी होकर वे तुम्हारी पढ़ाई छुड़वाने की बात सोचने लगी हैं।
गलतियाँ तुम्हारे जैसी लड़कियाँ करें और दोष पढ़ाई पर आ जाए ? पता
, इससे हम सभी लड़कियों का रास्ता रुकता है ? ...'

पर मुझे यहीं रुक जाना पड़ा। देखा, लता रो रही थी। मुझे बुरा
लगा। पता नहीं, अपनी झोंक में मैं उसे क्या-क्या कह गई थी। क्या मैं
उसे ताड़ना दे रही थी ? क्या अधिकार था इसका मुझे ? मैं अभी जानती
ही क्या हूँ ? जाने लता भीतर से कितनी दुखी थी ? चुपचाप क्या-क्या
सहती आ रही थी ? इसके पूर्व कभी उसने कुछ खुलकर बताया भी तो
नहीं था। मैं भी उसके लटके चेहरे पर अक्सर मजाक ही उड़ाती रही।
या उसपर तरस खाती रही। कभी उसे भीतर तक समझने का प्रयत्न
नहीं किया। क्या मुझे उसे समझना नहीं चाहिए था ? अभी भी पूरी तरह
कहाँ समझी हूँ ?

मेरा मन भर आया। मैंने उमगकर लता को अपने साथ भींच लिया
और उससे माफी माँग ली। पर वह नाराज कहाँ थी ? मुझसे तो वह
पहले भी कभी नाराज नहीं हुई थी। कुछ भी कह दूँ, बस देखती-भर रह
जाती थी, जैसे मुझे पढ़ रही हो। उसने बताया, वह मुझसे बिलकुल नाराज
नहीं है, बल्कि नई रोशनी देने के लिए कृतज्ञ है। वे आँसू तो ग्लानि के थे
और कृतज्ञता के थे और हमारे आपसी प्यार के थे। प्यार, जो इस अप्रत्य-
क्ष ताड़ना से कम नहीं हुआ, और प्रगाढ़ ही हुआ। सच, मुझे भी तो लग
रहा है कि मेरे साथ चिपकी रहने वाली यह छुईमुई-सी लड़की आज ही
मेरे करीब आ सकी है।

अब देखना है, आगे वह क्या करती है ?

जवान होती लड़की की चिन्ता

लता की माँ

आजकल की इन लड़कियों का भी कुछ पता नहीं चलता। हर बात में दूसरों की नकल। हर बात में दिखावा। भला क्या रखा है, इस दिखावे में ? पर चलो छोरी कुछ ठीक तो हुई ! नहीं तो हर वक्त भुनभुनाती ही रहती थी, 'यह घर है या कबाड़खाना ? यह चाय कैसी बनाई है ? यह क्या पकाया है ? यह क्या बिछाया है ? यह चीज यहाँ क्यों रखी है ? मेरी सहेलियों के सामने तुम ऐसे क्यों बोलीं ?' बस हर समय यह ऐसा क्यों, यह वैसा क्यों ? लड़की न हुई, माँ की अफसर हो गई और सहेलियाँ न हुईं, सुवा हो गईं।

जब देखो, तब मीना की तारीफ। उसके घर की या उसकी माँ की तारीफ। यह नहीं कि उसके जैसा कुछ करके भी दिखाए ! पढ़ाई में पीछे घर के कामकाज को हाथ नहीं लगाना। बस मीना जैसा फैशन चाहिए और उसके जैसा ही घूमना। उस छोकरी ने ही इसका दिमाग बिगाड़ रखा था। खुद तो घर में टिकती न थी, इसे भी उकसाती रहती थी। वह तो इसे अपने बाबूजी का डर है, जो उसके साथ बाहर कम निकलती है, नहीं तो मुझे तो कुछ समझती ही न और उसके जैसी ही आवारा हो जाती ! पता नहीं, कैसी माँ है उसकी, जो जवान होती छोरी को घर में बिठाकर नहीं रखती। इतनी आजादी क्या अच्छी है ? मेरा बस चले तो कालेज में पढ़ने भी न भेजूँ। पर रो-धोकर अपने बाबूजी को मना लेती है और वे भी मान जाते हैं। मैं कर ही क्या सकती हूँ ? शायद उनका कहना भी ठीक है। आजकल कम पढ़ाई से अच्छा घर-वर भी तो नहीं मिलता !

पर गनीमत है कि इसकी अकल कुछ ठिकाने आ रही है। थोड़ा-घना

घर का काम करने लगी है। भाई-बहनों को भी नहला-धुला के तैयार कर देती है। घर भी झाड़-फूंक के सँवार देती है। उस दिन बाबूजी से अपने कपड़ों के लिए पैसे माँग लिए और जाकर गुड्डी के लिए फ्राक और घर के लिए नए प्लेट-प्याले ले आई। मैं तो ताकती ही रह गई, लता को यह अकल कहाँ से आ गई? कल मचल के मेरे से दस रुपए ले गई। मैं सोचूं, किताब, कापी के लिए चाहिए होंगे। आई तो हाथ में एक नया मेजपोश था। लाकर मेज पर बिछा दिया। फिर मुन्नी, राजू को समझाने लगी, 'देखो इस पर स्याही या चाय नहीं फैलाना—हाँ।' और वे भी कैसे मुंडी हिला रहे थे! मुझे तो देखकर हँसी आ गई। लता के साथ-साथ जैसे उनका भी सुधरना शुरू हो गया।

भला ऐसे खुद आगे होकर काम करो तो कर लो अपनी मरजी। अपना क्या जाता है? पहले ही राजू, मुन्नी को ऐसे प्यार से सिखाती तो क्या वे न मानते? जब देखो, तब उन्हें डाँटती-फटकारती रहती थी। हर बात पर झुंझलाती और नाक-भौंह सिकोड़ती रहती थी। जरा-जरा-सी बात पर रूठकर खाना-पीना छोड़ देती थी। अपना भी खून जलाती थी, मेरा भी। मैं तो कहूँ, कौन लेगा इस मुँह-चढ़ी लकड़ी को? और कहाँ करेगी यह गुजारा? बस इसी चिन्ता में घुली जा रही थी मैं तो। बाबूजी को बताऊँ तो वो भी टाल दें—'अभी नासमझ, अल्हड़ उमर है इसकी, अपने आप समझ जाएगी।' या मेरे को ही डाँट दें—'तुम भी उसके साथ ठीक पेश नहीं आती हो। वह क्या कहते हैं, 'कन्टरोल' तो कर नहीं सकती, बस शिकायतें ही शिकायतें। तुम्हें सिखाना आता भी है?'…और मैं चुप के रह जाती थी। न बाप सुने, न बेटी, तो मैं भला क्या करूँ?

अब तो रसोई में जाकर खाना बनाना भी सीखने लगी है। न पकाना आए, न नमक-मिर्च का अंदाज। बस सफाई और सजावट पर ही ध्यान। यह चीज वहाँ नहीं, यहाँ। यह ऐसे नहीं, ऐसे। कभी-कभी तो नाक में दम कर देती है। पर चलो, रसोई में इसका ध्यान तो गया! नमक-मिर्च का अंदाजा और पकाना भी धीरे-धीरे सीख जाएगी…यह सब तो ठीक है। पर वह तो घर के खर्चों में भी दखल देने लगी है। यह खर्चा फालतू है। …। इसे बंद करो। यह चीज लाओ, यह मत लाओ। भला तुम

अभी क्या समझती हो ? अपनी पढ़ाई से मतलब रखो। मैं कहूँ, इस छोरी का इतना आगे बढ़ना ठीक नहीं। जैसे मैं तो कुछ हूँ ही नहीं। पर बाबूजी को कहती हूँ तो मेरी ही शामत—'ठीक तो कहती है ? कुछ उसे भी करने-चलाने दो। सीखेगी ही तो। कुछ उसकी मानो, कुछ अपनी मनवाओ। जवान होती लड़की के साथ ऐसे ही चल सकता है।'

मान लिया भई। यह खुश रहे सही। घर में इसका मन तो लगे किसी तरह ! भाई-बहनों से ठीक बोले। पढ़ाई ठीक करे। मेरी माने, चाहे न माने। पर नहीं, अब किसी वक्त कहना नहीं भी मानती तो कम से कम बोलती इज्जत से है ! कल कैसे अपनी बाँहें मेरे गले में डालकर इसने अपनी जिद मनवा ली ? नहीं मरजी थी तो भी मैंने इसे शीलू के साथ जाने दिया। कभी-कभी तो इसकी सफाई चीज को छूने भी डरने लगी हूँ। हँसी आ जाती है अपने आप पर। आखिर माँ ही तो हूँ। बच्चा प्यार से, इज्जत से पेश आए तो माँ को उसके हठ के आगे झुकना ही पड़ता है।

हैरानी तो तब होती है, जब वह कालेज से आकर कालेज की और सहेलियों की बातें मुझे सुनाने लगती है। भला, मैं क्या जानूँ यह सब ? पर लगता है, न समझते हुए भी मैं उन बातों में रस लेने लगी हूँ। मन में आता है, हम क्यों न पढ़े कालेज में ! एक हमारा जमाना था, लड़की को स्कूल भी नहीं भेजना, बिगड़ जाएगी। आज लड़कियाँ कालेज में लड़कों के संग-संग बैठकर पढ़ रही हैं। जमाने की हवा के हिसाब से यह सब ठीक ही है। पर क्लास के बाद लड़के-लड़कियों का आपस में मिल कर यह हँसी-ठट्ठा करना क्या ठीक है ? इनके बैठने की अलग-अलग जगहें क्यों नहीं बनाई जातीं वहाँ ? यह तो ठीक है कि अपनी सहेलियों की तरह लता उनमें घुलती-मिलती नहीं।...पर क्या पता ? उस मुई लीना का संग तो नहीं छोड़ती न ?

हाँ, इस पिछले इम्तिहान में मेरी लता फिर क्लास में आगे निकल गई। शायद यह उसके इधर खुश रहने का ही नतीजा है। चलो, अच्छा है। वो कहते हैं ना, 'देर आयद, दुरुस्त आयद'। सयानी हो रही है। कल को उसे दूसरे घर जाना है। सबसे हँसे-बोले। अपना सुभाव और बरताव ठीक रखे। तभी तो निभेगी, नहीं तो माँ को ही सब दोष धरते हैं। जब

दो-दो दिन आलसी बनकर औंधी पड़ी रहती थी और बात-बात पर रोती-भीकती, भुनभुनाती रहती थी, तब मुझे तो इसकी चिंता ही लग जाती थी। हे भगवान, न जाने क्या होगा? कौन निभाएगा इसे? पर भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि लड़की ठीक हो रही है। चलो, चिंता मिटी।

पर कहाँ? चिंता कभी मिटती है? वह भी जवान होती लड़की की माँ की? मुझे तो इसके खुश रहने के पीछे कुछ और ही दिख रहा है। पड़ोस का यह नरेश कैसे बहाने-बहाने से चक्कर काटने लगा है आजकल? बचपन में ये साथ खेले हैं, ठीक है। पर बड़ी होने पर अभी हाल तक तो लता उससे बात तक नहीं करती थी। कैसे झटक देती थी उसे! अब? मुझे तो उस छोकरे के रंग-ढंग अच्छे नहीं लगते। माँ-बाप से तो पटती ही नहीं। जब देखो तब बन-ठनकर दो-चार दोस्तों के साथ घूमता रहता है। पढ़ाई भी छोड़ बैठा है—'बिजनेस करूँगा।' भला ऐसों से कहीं बिजनेस सधे? अभी तो बाप का पैसा दिख रहा है न। जब उजाड़ देगा तब बाप को भी पता चलेगा।

पर वह जो है, जैसा है, हमें उससे क्या? हमें तो यह देखना है कि लता उससे मिले-जुले नहीं। पहले झटक देती थी, वैसा ही अब भी उसे झटक दे। इसका इधर उसके साथ इतना हँसना-बोलना ठीक नहीं। उस दिन तो वह न जाने क्या लेने आया था? हाँ · वह क्या कहते हैं, मैगजीन। और लता ने उसे बैठक में बैठा ही तो लिया! मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा तो लता फिर भड़क गई, 'अब घर आए से बात भी न करूँ? तुम उसे चाय न पूछो, पर पड़ोसी है, बैठने के लिए न कहना क्या अशिष्टता नहीं होगी?' पता नहीं, यह अशिष्टता क्या होती है? पर सच कहूँ, मुझे इसका नरेश को यूँ बैठा लेना जरा भी अच्छा नहीं लगा। वह तो मैंने बाबूजी को नहीं बताया, 'नहीं तो···। बस लता को ही डाँट के मना कर दिया, 'आगे से उससे बात नहीं करना, नहीं तो बाबूजी से बोल दूँगी।' कुछ भी कहो, मुझसे नहीं, तो बाबूजी से तो डरती ही है। 'अच्छा बाबा, नहीं बैठाऊँगी आगे,' लता ने कहा और बात खत्म हो गई।

फिर भी चिंता तो है ही।

यह सपना है या सच्चाई ?

लता

आज फिर बरसात हुई। सुबह से ही हल्की झड़ी लग गई थी। खिड़की में बैठकर देखना अच्छा लगा। माँ ने आवाज दी। मैंने जल्दी-जल्दी नाश्ता खाया, चाय पी और फिर आकर खिड़की में बैठ गई। न जाने क्यों, आज पहली बार बरसात मुझे इतनी अच्छी लग रही है? शायद, गर्म-गर्म पकौड़ियों ने चाय का स्वाद बढ़ा दिया था, इसलिए। माँ ने बूंदाबांदी देख, आज मूंग की पिट्ठी की पकौड़ियां बनाई थीं। मुझे ये बहुत पसन्द हैं। पर पकौड़ियां तो बाद में खाई थीं। बरसात का आनन्द लेने मैं खिड़की में पहले से ही बैठी थी। गली में कीचड़ भी है, गन्दगी भी। फिर भी आज बरसात मुझे सुखद लग रही है। हल्की फुहारों से भीगना भी अच्छा लग रहा है। सीलन है। पर घुटन नहीं है। ठंडी हवा को नथुनों से खींच-खींचकर मैं अपने भीतर ताजगी भरती जा रही हूँ।

मन तो ज्यादा ही। अभी ही देख लो। घर का ध्यान आता कि कमरे का सारा मजा किरकिरा हो गया। खिड़की से उठ आई हूँ और अकारण इधर-उधर चहलकदमी करने लगी हूँ। कालेज का वक्त हो गया है और मेरी चीजें ही नहीं मिल रहीं। किताबें कहाँ पड़ी हैं, कापियाँ कहाँ। पेन भी कहीं भी नजर नहीं आ रहा? कमीज पर प्रेस भी नहीं हुई, अब देर नहीं होगी? यह मुझे क्या होता जा रहा है? घर की व्यवस्था ठीक कर रही हूँ और खुद अव्यवस्थित होती जा रही हूँ। ऐसे कैसे चलेगा?

स्कूल में देखती थी, हर लड़की बन-ठनकर आती थी। पर मुझे अपने कपड़ों का कभी विशेष ध्यान नहीं रहा। कालेज आने पर लड़कियों में यह प्रवृत्ति और भी अधिक देखी। कोई सुन्दर है, कोई असुन्दर, पर सुन्दर बनने की कोशिश किसी में भी कम नहीं है। जैसे सुन्दर दिखने में होड़ लगी हो। प्रदर्शन की भी। कोई अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करती है, कोई चपलता का। कोई अमीराना रख-रख का, कोई झूठे अहं का ही। सभी की चाल में एक मस्ती, एक खुमार-सा देखती। मैंने भी घर में लड़-झगड़कर बढ़-चढ़कर कपड़े सिलवाए। पर मेरी चाल में वह मस्ती, वह खुमार नहीं आ पाया। सहेलियों की खिलखिलाहट में मैं कभी शामिल न हो सकी। लड़कों की तो छाया से भी दूर भागती। धीरे-धीरे निराशा में डूबती गई। झुँझलाहट बढ़ती गई। न घर में मन लगता, न कालेज में। सजने-सँवरने से भी विरक्ति होने लगी। अपने घर की तुलना में मुझे अपना सजना व्यर्थ लगता। एक ढोंग। अपने को छलने का एक बहाना। दूसरों से ईर्ष्या होती। अपने से घृणा। आत्महत्या करने को जी चाहता।

सीमा ने आँखें खोल दीं तो बहुत साफ-साफ दिखाई देने लगा। मन का सूनापन भरने लगा। पढ़ाई और घर का काम, जो पहले बोझ लगता था, उसे मैं गुनगुनाहट से भरकर करने लगी तो वही अब हल्का लगने लगा। माँ से सहानुभूति उपजी। भाई-बहनों के प्रति प्यार। घर की सँवार में रुचि ली तो अपनी सँवार में भी फिर से रुचि जाग उठी। पर इस बार सहेलियों को नीचा दिखाने के लिए नहीं, स्वयं को कलापूर्ण ढंग से सजाने के लिए ही। इसलिए अब महँगी या अधिक पोशाकें नहीं चाहिए। बस जो हों, उन्हें इस तरह पहना जाए, इस तरह कि …।

पर स्वयं को नये आकर्षक ढंग से पेश करके भी मैं सीना वाली सारी मित्र-मण्डली में घुल-मिल नही पाती हूं। हीनभाव काफी छंट गया है। पर आत्मविश्वास जितना चाहिए, उतना नहीं जाग रहा। उतना क्या, जरूरत का भी शायद नहीं। कालेज के अपने सहपाठी लड़कों से मैं अभी भी बात नही कर पाती। बस हां-हूं या फीकी मुस्कराहट-भर। यह भी कोई बात हुई?

ऐसे ही एक भयानक सपने से मैं डर गई। आँख खुली तो हाँफ रही थी
पसीने से तरबतर। यह क्या था ? रात्रि के प्रथम पहर में तो मैं ए
रंगीन परी-लोक में थी। पहले बदन कसमसाया। उँगलियाँ चटखीं
फिर जैसे पंख खुल पड़े और मैं हवा में उड़ चली। उड़ती ही गई। ऊँचे
खूब ऊँचे। कितना आनन्द था उस ऊँचाई पर। कभी उन्मुक्त हँसी।
किलकारी छूटती, तो कभी एक हल्की सिसकारी—उई माँ ! और ठण्
हवा के झकोरे, जिसमें मेरी अलकें उड़ी जा रही थीं। और राजकुमार
सा सजा-धजा नरेश धीरे से उँगलियाँ बढ़ाकर उन्हें सँवारता जा रहा था
फिर नरेश थोड़ा-सा झुका। मुझे याद आया, उस दिन माँ बाबूजी
कह रही थी, 'क्या करते हो, बच्चे देखेंगे तो क्या कहेंगे ?' भनक मे
कानों में पड़ गई थी और मैंने न चाहते हुए भी सिर उठाकर उधर दे
लिया था। ···चार होंठों की मुस्कुराहट दो की बनने जा रही थी
अचानक क्या हुआ ? एक जोर का धमाका और मैं उस ऊँचाई से एकद
धड़ाम से नीचे। न राजकुमार बने नरेश का कहीं पता था, न उस रंगी
परी-लोक का। और मैं भय से थर-थर काँप रही थी। कट्टर आर्यसमाज
बाबूजी की सादगी, संयम का उपदेश देती कठोर मुद्रा सामने तनी थी।

यह सपना था या भविष्य की सच्चाई ? मैं कुछ समझ नहीं पा रही
हूँ। लगता है, नरेश की निगाहें मुझे पागल कर देंगी। जितना ही उन्हें
भूलने का प्रयास करती हूँ, उतना ही उनमें उलझती जा रही हूँ। इस
भूलने के प्रयत्न में सब कुछ भूलती जा रही हूँ। कौन-सी चीज कहाँ रख देती
हूँ, कुछ याद नहीं रहता और बेकार में इधर-उधर चक्कर काटने लगती
हूँ। कल सब्जी में इतना नमक पड़ गया कि कसैली हो गई। किसी ने भी
नहीं खाई। शायद दो बार नमक डाल दिया था। शर्म के मारे इसीलिए
आज रसोई में नहीं गई। कह दिया, 'तुम्हीं बनाओ माँ, हमसे नहीं आता।'
वह तो माँ ने हँसकर टाल दिया, 'आ जाएगा धीरे-धीरे। बहुत वक्त पड़ा
है सीखने को। अभी तुम पढ़ो।' और मुझे छुट्टी मिल गई। माँ को क्या
मालूम कि आजकल मैं क्यों हर बात भूलने लगी हूँ। एक बार व्यवस्थित
होकर फिर से क्यों अव्यवस्थित होती जा रही हूँ। कहीं फिर पढ़ाई में न
पिछड़ जाऊँ ? लो एक और डर !

बुराई भी क्या है ? इसीलिए माँ उसे नापसन्द करती है न, कि उसने बी० ए० सैकिण्ड ईयर से ही पढ़ाई छोड़ दी है। यह ठीक तो नहीं किया नरेश ने। पर बी०ए० पास भी कर लेता तो क्या हो जाता ? कहाँ है नौकरी ? डिग्री लिए दर-दर घूमने से तो कहीं अच्छा है, पिता के बिजनेस में हाथ बँटाए। क्या कमी है उनके घर ? और क्या कमी है नरेश में ? उसकी आँखों की गहराई साफ बता रही है कि उनमें प्यार का महासागर ठाठें मार रहा है। प्यार ! किसके लिए ? मैं क्या जानूँ ? क्या जानना जरूरी है ? शायद। लेकिन क्यों ? मुझे अभी शादी थोड़े ही न करनी है ? अभी न सही 'तो ?

फिर नरेश, नरेश, नरेश ! यह क्या हो गया है मुझे ? क्यों सोचने लगी हूँ, उसके बारे में इतना ? क्यों असम्भव के पीछे भाग रही हूँ ? लेकिन इसमें असम्भव क्या है कहीं ? हाय राम। क्या करूँ ? किससे पूछूँ ? 'लीना से ? क्या कहेगी वह ? किसी लड़के से बात तो करने की हिम्मत नहीं और चली है प्रेम करने। क्या यह प्रेम है ? इस शब्द पर तो मेरा ध्यान ही नहीं गया पहले। अभी भी समझ नहीं पा रही हूँ कि क्या मैं नरेश से प्रेम करने लगी हूँ ? क्या सचमुच ? नहीं, तो फिर ऐसा क्यों हो रहा है मेरे साथ ? हाय, कितना मुश्किल है यह समझना !

एक बात और भी नहीं समझ पा रही हूँ। लीना, जो इतने लड़कों के साथ हँसती-बोलती है, उसके साथ ऐसा क्यों नहीं हुआ ? शायद हुआ हो, मुझे बताया न हो उसने ? तो मुझे भी नहीं बताना चाहिए।" लेकिन मैंने लीना को कभी ऐसे उलझा हुआ नहीं पाया। क्या वह अपने मन की उलझनों को भी सहजता से छिपा लेती है ? शायद छिपा लेती हो। तभी हर हालत में हँस सकती हो ? पर मैं लीना से नहीं छिपा पाऊँगी। छिपाऊँगी तो ऐसे ही उलझी रहूँगी। क्या पता, कब क्या कर बैठूँ ? यह भी सम्भव है कि ठीक से पढ़ाई न कर पाऊँ और फिर पिछड़ जाऊँ। लीना से पूछना ही होगा। वही मुझे इस नई उलझन से उबार सकती है। थोड़ी झिझक है जरूर। पर लीना ही तो मेरी एकमात्र अंतरंग सहेली है। उससे क्या छिपाना ?

ओह लीना !" अब तो तुम्हीं मुझे सँभालो। अपने आपको तुम्हारे हवाले कर रही हूँ।

सोच का यह दायरा, यह नजरिया क्यों ?

सोना

यह लता तो बड़ी छुपी रुस्तम निकली ! मैंने देखा है, अक्सर इस तरह की लड़कियों के साथ ऐसा ही होता है। हर किसी से दूर भागती फिरेंगी, फिर जैसे ही कोई सामने आया कि लट्टू। मीना और रमा के साथ भी तो यही हुआ ! बस स्वयं को फँसा लेंगी और उलझी रहेंगी। निकलने का रास्ता उन्हें कोई दूसरा सुझाए। यह भी कोई बात हुई ?

अरे भई, ऐसा लगता है, ऐसे सपने आते हैं तो इसमें क्या कोई नयी बात है ? हमारे सपनों में क्या कोई नहीं आता ? कई बार हमें भी वैसा नहीं लगता ? पर जानते हैं, अभी किसी के साथ उलझना नहीं है। देखना है, कौन कितने पानी में है ? मम्मी कहती हैं, 'पढ़ाई की पूरी अवधि-भर देखो। ये जो दीपक, राकेश, राजीव, रमण बारी-बारी से नजदीक आकर अपनापन जता रहे हैं—इन सभी को। पर एक दूरी बनाए रखकर। साथ घूमने-फिरने, हँसने-बोलने में कोई हर्ज नहीं। इससे बेकार की झिझक मिटती है। पुरुषों को, उनके मनोविज्ञान को समझने का मौका मिलता है। सोचने-समझने का दायरा बड़ा होता है। सामान्य ज्ञान बढ़ता है। व्यक्तित्व निखरता है। व्यर्थ की कुंठाओं और घुटन से छुटकारा मिलता है। जीवन में 'बोरियत' नहीं, रस और ताजगी भरती है। काम बोझ नहीं लगता। समस्याएँ सालती नहीं। दिन अच्छी तरह कटते हैं। शामें हँसी-खुशी बीतती हैं। रातों को सुख की नींद सोते हैं।'

मम्मी का बताया यह नुस्खा बड़े काम आ रहा है और हम मजे से अपनी पढ़ाई कर रहे हैं। कोई बाधा नहीं। कोई रुकावट नहीं। भय या घबराहट का कोई काम ही नहीं। भय कैसा ? बस अपनी सीमा जानो।

के 'स्कैण्डल' तो कभी कालेज के 'दादाओं' को मूर्ख बनाने की तरकीबें। कभी सांस्कृतिक कार्यक्रमों की रिहर्सल, तो कभी पिकनिक। वक्त पर पढ़ाई सम्बन्धी गम्भीर चर्चाएँ भी। और नतीजा सामने है: हम में से कोई भी पढ़ाई में पीछे नहीं। कोई कभी फेल नहीं हुआ। किसी पर कोई आरोप नहीं लगा, न कभी किसी की प्रिंसीपल तक शिकायत पहुँची। सब हमें इज्जत और प्यार की निगाह से देखते हैं।

मैं जानती हूँ, लता को यह सब अच्छा लगता है। मेरे माध्यम से वह सबका जायजा लेती रहती है। शायद इसीलिए मेरे साथ चिपकी भी रहती है। पर समझ में नहीं आता कि फिर वह इन गतिविधियों में भाग क्यों नहीं लेती? ऐसा भी क्या डर है उसे? उसके बाबूजी मेरे डैडी की तरह इन बातों में रुचि न लें, सुनें नहीं, प्रोत्साहन न दें, पर मना क्यों करेंगे भला? क्या वे नहीं चाहेंगे कि उनकी लड़की आगे बढ़कर कुछ सीखे, कुछ बने और खुश भी रहे? माँ अनपढ़ है; नहीं समझती, तो उसे न बताए। बाबूजी को ही विश्वास में लेकर चल सकती है। और नरेश से या किसी भी लड़के से मिलना-जुलना तो माँ के सामने भी होना चाहिए, बाहर ही नहीं और छिपकर तो कभी नहीं। मेरे ख्याल में कोई भी माँ अपनी लड़की की दुश्मन नहीं होती। वह कभी नहीं चाहेगी कि उसकी लड़की किसी से बात न करे और अन्दर-ही-अन्दर घुटती रहे। लता को समझाना ही नहीं आता।

वह तो कहती थी, माँ घर की व्यवस्था में कुछ भी रद्दोबदल नहीं करने देंगी। फिर कैसे हुआ वह सब? इस मामले में भी दूसरा कोई क्या कर सकता है! लता को स्वयं ही कोशिश करनी होगी। मैं नहीं समझती कि लता समझदारी से काम ले तो उसके ये बंधन ढीले न हों? न सही ज्यादा आजादी। पर बंधनों की कोई सीमा तो होनी चाहिए? माँ-बाबूजी से बात करके लता ही यह सीमा निर्धारित कर सकती है। वह कोशिश ही नहीं करती।

शायद करती हो और परिस्थितियाँ साथ न देती हों? रमा, नीना तो ऐसे ही रहती हैं। उनकी कोशिश क्या काम आई? पर क्यों? क्या स उम्र की जरूरतें न समझती

उम्र की प्रतिक्रिया के दो छोर

लीना की मम्मी

बड़ी चिन्ता से भरकर लीना ने अपनी सहेली मता की समस्या मेरे सामने रखी है। पर मुझे इसमें कुछ भी अजीब नहीं लगा।

वयःसंधि ! किशोरावस्था और तरुणाई के बीच की एक अल्हड़, नाजुक और नासमझ उम्र। नासमझ, पर समझने की चाह से कितनी भरपूर !

लोग समझते क्यों नहीं कि यही वह उम्र है जिसमें किशोरियाँ एक साथ बहुत कुछ समझना चाहती हैं। पर उन्हें समझा नहीं सकता है, जो उन्हें समझे।

उम्र में इसकी प्रतिक्रिया बहुत तीव्र होती है। तेजी से विकसित होते अंगों
से अतिरिक्त शक्ति बनती है, जिससे काम करने का अतिरिक्त उत्सा
पैदा होता है। इस अतिरिक्त उत्साह से भरकर किशोरियाँ बहुत कु
करना चाहती हैं। उनके कुछ अपने सपने होते हैं। प्रायः ऊँचे आदर्शों से
भरपूर। कल्पनाएँ ऊँची-ऊँची उड़ानें भरती हैं—'मैं यह बनूँगी'...'मैं य
करूँगी।' कल्पना के इस रंगीन लोक में विचरण करते समय प्रायः उन्
यथार्थ के धरातल का ध्यान नहीं रहता। और जब वे लोक-व्यवहार की
धरती पर लौटती हैं तो पाती हैं, प्रतिकूल स्थितियाँ, वर्जनाएँ और निषे
के स्वर। आर्थिक और सामाजिक सीमाएँ। सुरक्षा के लिए बिठाए ग
कड़े पहरे। आदेश, उपदेश। बार-बार याद दिलाई गई लड़की होने की
चेतना।' और बन्धन कसमसाने लगते हैं। आक्रोश उमड़ने लगता है।
रिश्तेदार और हितैषी दुश्मन लगने लगते हैं। चारों ओर का सारा समा
विरोधी जान पड़ता है।

एक ओर, भीतर बनती यह अतिरिक्त ऊर्जा पहले उनके उत्साह को
उभारती है, फिर उसका अपव्यय उन्हें निराशा में डुबो देता है। उन्हें समझ
में नहीं आता कि इस शक्ति का क्या करें? कैसे इसे राह दें? और रा
न पाकर कुंठित होती शक्ति व्यर्थ की उठा-पटक, क्रोध, उद्दण्डता, अवज्ञा,
लापरवाही में बदल, विकृतियाँ पैदा करती है। या उदासीनता, निराशा,
हीनता, संकोच में बदलकर नष्ट होने लगती है, जबकि इसी शक्ति के
सही उपयोग से वे अपने भविष्य को सँवार सकती हैं।

दूसरी ओर, शरीर के आकस्मिक परिवर्तन उनमें एक आश्चर्यलोक
की सृष्टि करते हैं। उभारों की कसमसाहट उन्हें एक अजीब मीठी अनुभूति
से भर देती है। बनने-सँवरने, आकर्षक दिखने की लालसा जाग उठती है।
घर की बजाए बाहर की बातों में, भाई-बहनों की जगह सहेलियों में और
लड़कियों की जगह लड़कों में रुचि बढ़ती है। लड़कों के सान्निध्य में एक
पुलक, एक सिहरन होती है, जिसमें भय की अनुभूति भी मिली होती है।
किशोरियाँ इन सारे परिवर्तनों को जानना-समझना चाहती हैं। स्वयं को
भी। लड़कों को भी। दुनिया और उसके दस्तूरों को भी। जानकारी के
अभाव में वे स्वयं अपने लिए ही एक अबूझ पहेली बनकर रह जाती हैं।

दूसरों को समझना तो तब उनके वश में होना ही नहीं।

जरूरत है, इस 'अतिरिक्त ऊर्जा' के सही उपयोग की। और इस 'समझने की चाह' को राह देने की। पर कितनी माताएँ हैं, जो यह कर पाती हैं ?

किशोरावस्था को पार कर तरुणाई की दहलीज पर कदम रखने वाली लड़की न बच्चों में शुमार होती है, न बड़ों में। यदि वह बच्चों वाली अल्हड़ बात करे तो उसे झिड़की मिलती है, 'इतनी बड़ी हो गई, बात करने का शऊर नहीं। अब तुम छोटी बच्ची नहीं हो। सोच-समझकर बोलो। सलीके से पहनो-ओढ़ो। ढंग से चलो।' यदि वह बड़ों वाली समझदारी की बात करे या कुछ पूछ बैठे, तो भी झिड़की 'अभी से बड़ों की बात में टाँग मत अड़ाओ। अभी तुम्हें क्या समझ है ? समय आने पर खुद ही समझ जाओगी।' आदि। नतीजा होता है, लड़की घर से कटने लगती है और बाहर की बातों में अधिक रुचि लेने लगती है। उस पर यदि माँ-बाप पुराने दकियानूसी विचार के हुए, तब तो बेचारी की हालत और खराब हो जाती है। बाहरी दुनिया और घर के वातावरण में कोई तालमेल न बैठ पाने पर उसकी अस्थिरता या उथल-पुथल और बढ़ जाती है।

मीना पूछती है, 'लता ऐसी क्यों है ?' और वह हो भी कैसी सकती थी ? उसकी समझने की चाह को राह नहीं दी गई। उसकी अतिरिक्त शक्तियों को किन्हीं हाबियों और खेल-कूद में नहीं लगाया गया। मनोरंजन के अभाव में उसकी रंगीन कल्पनाएँ धूमिल पड़ती गईं। लड़कों की तस्वीर उसके सामने भय, संदेह के मिले-जुले अबूझे रंग में डुबोकर पेश की गई। अब कुछ भी सहज ढंग से नहीं चलता और चारों ओर निषेध की दीवारें कसने लगती हैं तो बचपन में पड़ी ये ग्रंथियाँ इस उम्र में अधिक सक्रिय हो उठती हैं। ये ग्रंथियाँ यदि किशोरावस्था में भी न खोली गईं तो आगे चलकर ग्रंथियों से भरा यह व्यक्तित्व वैवाहिक जीवन को भी कुंठाग्रस्त बना देता है। और दोष दिया जाता है, कभी पति को, कभी सास को, कभी पत्नी को, तो कभी दहेज जैसी सामाजिक रीतियों को। यद्यपि वैवाहिक असफलता में इन सबका भी कुछ न कुछ हाथ होता है, पर इसके पीछे अधिकतर किशोरावस्था में पड़ी ये ग्रंथियाँ ही होती हैं, जो

कहने में कोई संकोच नहीं कि सीना से कालेज की बातें सुनते कई बार मुझे लगा, 'काश ! हम भी कालेज में पढ़े होते ?' क्या सचमुच एक माँ अपनी तरुण बेटी में अपनी बीती तरुणाई को नहीं खोजती ?

यह सब बताकर मैं कहना चाहती हूँ कि माँ अपनी उम्र को याद कर और बदले जमाने को देखकर बेटी के साथ पेश आए तो ये दूरियाँ मिट सकती हैं। ये कुंठाएँ कट सकती हैं और देश की अनगिनत प्रतिभाएँ व्यर्थ होने से बचाई जा सकती हैं। हमारा काम है, लड़कियों को ऊँच-नीच समझा देना और उन्हें राह सुझा देना—बस। अपना अगला रास्ता वे आप ही खोज लेंगी। हमें उनके पीछे लगकर जासूसी करने की कोई जरूरत नहीं। जिस दिन सीना ने आकर दीपक के बारे में मुझसे पूछा, मैं तो उसी दिन निश्चिन्त हो गई थी कि मेरी बेटी कोई गलत कदम नहीं उठाएगी। यदि कभी अनजाने में या कारणवश किसी विषम स्थिति में फँस भी गई तो उसे विश्वास होगा कि हम उसकी सहायता के लिए तैयार हैं। इस सुरक्षा, इस विश्वास और निर्देशन की छाँह में ही तो वह निर्भय होकर आगे बढ़ रही है ! कितनी योग्यता और लोकप्रियता अर्जित करके ! सभी की चहेती। एक चहचहाती हुई चिड़िया-सी। धीरे-धीरे सहज भाव से एक-एक पंखुड़ी खोलते हुए फूल बनती कली-सी। लता की तरह चटखती, कसमसाती या फूल बनने के लिए छटपटाती कली नहीं, जो खिलेगी जरूर, पर पूर्ण विकास, पूर्ण सुगन्ध लेकर नहीं।

लता का इसमें दोष नहीं। दोष है उम्र का और उसे घेरने वाले वातावरण का। सीना कहती है, मैं जाकर उसकी माँ को समझाऊँ। उसके बाबूजी से बात करूँ। व्यर्थ है। यह तब हो सकता था, जबकि लता ने कोशिश करके हमारे बारे में उनकी पूर्वधारणा को बदलने में पहले कुछ सफलता पाई होती। वह तो ऐसी कोशिशों से बचती रही और निराशा में डूबती रही। सीना भी अपनी उम्र के अतिरिक्त उत्साह और आशावाद में उसे ठीक से समझ नहीं पाई।

लता की समस्या का हल न उसके निराशावाद में है, न सीना के अति आशावाद में। दोनों की स्थितियाँ भिन्न हैं। इसलिए समाधान भी भिन्न हैं। सीना अभी इस भिन्नता को नहीं समझ सकती। समझेगी तो समय

तो क्या यह प्रेम नहीं !

लता की सोच

कितने सहज भाव से लीना की मम्मी ने मुझे पास बैठाकर सब पूछ लिया, "क्या तुम किसी से प्रेम करने लगी हो ?" मैं तो शर्म से पानी-पानी हो गई। भला क्या उत्तर देती ? सिर झुक गया उनके सामने। आँख ऊपर उठनी ही न थी। तभी उन्होंने पीठ पर हाथ रखा, "शर्माओ नहीं, प्रेम करना कोई गुनाह नहीं है। मुझे बता दो तो, हो सकता है मैं तुम्हारी कोई सहायता कर सकूँ।"

मैंने सिर उठाया और आँखें उन पर टिका दीं। पर विस्फारित-सी उन्हें देखती ही रह गई, मुँह से बोल एक नहीं फूटा। मुझे यकीन ही नहीं आ रहा था कि कोई माँ प्यार से ऐसे भी पूछ सकती है या कोई बेटी माँ से इस तरह बात कर सकती है जैसे सामने माँ नहीं, कोई सहेली हो। एक मेरी माँ हैं। उन्हें भनक तो पड़े कहीं से ऐसी, चिल्ला-चिल्लाकर सारा घर सिर पर उठा लेंगी।

मेरा असमंजस देख लीना की मम्मी ने फिर मेरा सिर सहलाया, "बता दो बेटी, प्रेम के नाम से इतना भय क्यों ? यह किसी बुराई का नाम नहीं। यह तो मन की एक पवित्र भावना है। मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली, उसे जीना सिखाने वाली भावना, जो घृणा, छल-कपट, क्रूरता जैसे दुर्गुणों को काटकर मन को गंगा-सा निर्मल बनाती है। ऐसा पवित्र शब्द 'प्रेम' गुनाह कैसे हो सकता है !"

धककड़, अंधड़-तूफान भरे मन-मस्तिष्क में जैसे शीतल [illegible]। लगा, वे कहती रहें, मैं सुनती रहूँ। बस, मैं मुझसे उत्तर मैं दे नहीं पाऊँगी। मैं क्या जानती थी हूँ ? मेरे मुँह

ना ही निकला, "तो तो फिर ?"

लीना की मम्मी ने तुरन्त बात को आगे पकड़ लिया, "फिर उस पर टोक क्यों, यही न कहना चाहती हो ? मैं भी यही चाहती हूँ कि तुम बन पूछो। यही क्यों, इस सम्बन्ध में जो भी तुम्हारे मन में दुविधा है, शंकाएँ हैं, उन सबपर खुलकर बात करो।"

'मुझे समझ में नहीं आता ?"

'हाँ-हाँ, कहो, क्या समझ में नहीं आता ? जो नहीं समझता, उसे । जिसे नहीं जानती, उसे जानो।"

'मैं नहीं जानती, नरेश मुझे इस तरह ठिठककर, निगाह भरकर क्यों है ? बात तो उसने कभी कोई ऐसी-वैसी की नहीं, सिवाय किताब-न लेने-देने के, फिर ?"

'तुम यही जानना चाहती हो न कि क्या वह तुम से प्रेम करता है ?"

'... " उत्तर में फिर केवल मेरा सिर झुक गया।

'और इस बात को लेकर ही इधर दिन-रात परेशान रहने लगी हो ? और बात-बात में भूलने लगी हो ? और पढ़ाई में पिछड़ने लगी और " मैं भयभीत हो उठी, 'हाय राम ! इन्हें यह सब कैसे ?' " . . और इस तरह भय खाने लगी हो कि किसी को पता न ाए यही न ?"

रुआँसी हो आई। जैसे मेरी चोरी पकड़ी गई हो। उठकर भागना पर भाग भी न सकी। हिम्मत करके कह ही तो दिया, "आप तो हैं आंटी, मेरी माँ, बाबूजी !"

हाँ-हाँ, खूब जानती हूँ उन्हें। पर क्या तुम्हें नहीं जानती ? यह क्या बना रखी है तुमने अपनी ? जानती भी है पगली कि प्रेम क्या

फिर अवाक्। बस उनकी ओर ताकती रह गई। फिर उन्होंने . "प्रेम तो बहुत मधुर, बहुत उदार, बहुत ब । इसे क्षणिक आकर्षण से जोड़ लेना ठीक नहीं। यह भा भावना है, न बच्चों का खेल। इसे महज सिनेमाई अर्थ में दे हैं। जैसे आज के सिनेमा के यथार्थ और जिन्दगी के यथार्थ में

है—समझती हो न ?" मैंने सिर हिलाया, "वैसे ही तुम्हारी इस कच्ची उम्र की अधकचरी समझ और प्यार का अर्थ समझने लायक सही उम्र की परिपक्व समझ में भी अन्तर होता है। यह "

हाय, मैं तो वह सब भूल ही रही हूँ कि उन्होंने इस बीच क्या-क्या कहा। मैं पूरी तरह अपने आपमें थी ही कहाँ ? हाँ, उन्होंने आगे कहा था, "घबराओ नहीं, तुमने कुछ गलत नहीं किया, गलत नहीं सोचा। इसमें तुम्हारा दोष नहीं। यह उम्र ही ऐसी है। इस उम्र में लड़के-लड़कियों के बीच आकर्षण स्वाभाविक है। यह न हो, वही अस्वाभाविक बात होगी। इसलिए इसे लेकर विचलित या अस्थिर होने की जरूरत नहीं। केवल तुम्हें यही समझना है कि यह सहज विपरीतलिंगी आकर्षण न तो कोई गलती है, न पाप। इसे समझो, इस स्तर पर 'प्यार' का नाम भी नहीं दिया जा सकता। यह मात्र तुम्हारी उम्र का तकाजा है। उसकी स्वाभाविक माँग है। सामाजिक बंधनों (यहाँ नियमों) के कारण परस्पर दूरी से यह आकर्षण ज्यादा लगता है। करीब आने पर जरूरी नहीं कि यह लड़का तुम्हें उसी तरह भाये। या भाये भी तो यह आकर्षण देर तक बना रहे। इस उम्र में कुछ भी स्थायी नहीं होता—न सोच, न पसन्द, न भावना, न आकर्षण। इसलिए निर्णय या चुनाव की यह उम्र नहीं है। भावुकता में बह-कर जल्दबाजी में उठाया गया कोई भी कदम सही निर्णय या चुनाव की ओर नहीं ले जाएगा। उससे बाद में पछताना पड़ सकता है। इसलिए माँ, बाबूजी की बात छोड़ो, पहले तुम अपने को तो जानो।"

मैं बड़े ध्यान से उनकी बातें सुनती रही। 'नियम' या 'बंधन' की बात पर खुलासा भी करना चाहा, पर चुप रही कि बाद में कभी पूछूँगी। पर यहाँ आकर तो मैं फिर उलझ गई। बड़े आराम से उन्होंने कह दिया, "पहले अपने को तो जानो!" यही तो मुख्य समस्या है! सचमुच मैं नहीं जानती, मैं वास्तव में क्या चाहती हूँ। यही मालूम होता तो अपने आपमें उलझती क्यों?

ने

आजकल तुम अपने पहनने-ओढ़ने में अधिक रुचि नहीं लेने लगी ? शीशे के सामने खड़ी होकर स्वयं को मुग्ध भाव से नहीं निहारती ? सहेलियों की निगाह से स्वयं को नहीं देखती ? कहीं कोई कमी या कुरूपता दिखाई देती है तो उसे लेकर चिंतित नहीं होती ? सुन्दर बनने या दिखने की लालसा तुम्हारे भीतर पहले से कहीं अधिक नहीं जाग गई ? यह सब क्या है ? क्या यह तुम्हारे भीतर से उठी प्राकृतिक माँग नहीं ? और इसी में कहीं यह भीतरी माँग भी शामिल नहीं कि लड़के भी तुम्हारी ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखें ? बोलो है कि नहीं ?"

मेरी बोलती फिर बंद। शर्म से लाल होकर मैंने केवल सिर हिला दिया। आगे सुनने के लिए कान खड़े कर लिए। वे कहती जा रही थीं, "अपने से पूछो, क्या तुम्हारी यह सज-धज केवल नरेश के सामने जाने के लिए ही होती है ? दूसरे सहपाठी लड़कों से क्या तुम अस्तव्यस्त दशा में मिलना पसन्द करोगी ? नहीं न ? तो इस एक बात से ही समझो कि तुम्हारे भीतर की यह माँग किसी एक से नहीं जुड़ी। यह तो इस उम्र की एक सहज प्राकृतिक माँग है। संकोच या भय से तुम जितना ही इसे दबाती हो, इस ओर तुम्हारा चिंतन उसी अनुपात में बढ़ जाता है। नरेश तुम्हारा बचपन का साथी है, पड़ोसी है, घर के पास तुम्हें सहज उपलब्ध है, इसलिए अपनी इस भीतरी माँग को तुम उसके साथ जोड़कर देख रही हो। उसकी जगह कोई और लड़का तुम्हारे सम्पर्क में आता, तब भी तुम यही करतीं। रही बात नरेश की, तो वह भी तो इस उम्र की इसी प्रक्रिया से गुजर रहा है। उसे भी किसी लड़की का साथ चाहिए। रोज-रोज सामने पड़ने से उसका तुम्हारे साथ कुछ लगाव हो गया लगता है। जो लड़के-लड़कियाँ घरेलू वातावरण के दबाव से आपस में ज्यादा कटे रहते हैं, सहज भाव से परस्पर मिल-जुल नहीं पाते, उनके साथ अक्सर ऐसा होता है कि जो पारा

धीरे पकने-पनपने दो। नरेश को प्रेमी नहीं, मित्र मानकर उससे मित्रता बढ़ाओ। निकट आने पर धीरे-धीरे उसके सारे रूप तुम्हारे सामने खुलने लगेंगे। उन्हें खुलने दो। तभी न तुम उसकी परख-पहचान कर पाओगी। अभी तो तुम उसे निकट से जानती ही नहीं। तो तुम्हारे बीच प्रेम कैसा? नहीं, यह प्रेम नहीं है। यह केवल दूरी का विपरीतलिंगी आकर्षण है। यदि तुम अनावश्यक संकोच छोड़, पसन्द के अन्य सहपाठी लड़कों के साथ भी इसी तरह सहज मैत्री भाव से मिलने-जुलने लगोगी तो तुम पाओगी कि कहीं कोई उलझन नहीं है और दुनिया में नरेश से अच्छे भी कई लड़के हैं। अन्तिम पसन्द या चुनाव की बात तो तभी आएगी न, जबकि तुम्हारे भीतर धीरे-धीरे यह परख-दृष्टि विकसित होगी। फिलहाल न तो तुम इस स्थिति में हो, न नरेश कि एक-दूसरे को लेकर विवाह का सपना देखने लगो। नासमझ उम्र में असंभव के पीछे भागने से ही प्राय: असफलता हाथ लगती है और तुम लोग दोष देने लगते हो सामाजिक बंधनों को, या भाग्य को या माता-पिता को।

"बंधनों या रूढ़ियों से विद्रोह की बात भी बुरी नहीं। पर यह तभी उठती है, जबकि पहले अपना चुनाव या निर्णय सही हो। विद्रोह सफल भी तभी होता है, जब विद्रोह के परिणाम झेलने की सामर्थ्य हो, आर्थिक निर्भरता हो, व्यवहार-बुद्धि विकसित हो और इसकी परिपक्व समझ हो। इन सबके अभाव में असफल विद्रोह और निरर्थक कष्ट-सहन को ही आमंत्रण देना होगा...नहीं?" कहकर उन्होंने मेरी ओर देखा।

मैंने सहमति में सिर हिलाया। कोई उत्तर देने की स्थिति में मैं अभी भी नहीं आ पाई थी। उनकी बातों ने मुझे झकझोरकर रख दिया था। मैं इतनी अभिभूत हो उठी थी कि उस समय कुछ विशेष सोचने-समझने की स्थिति में ही नहीं रही थी।

मैंने राहत की साँस सी और उन्हें धन्यवाद देती हुई उठ खड़ी
ाते-आते फिर ठिठकी और मुश्किल से कह पाई, "अगली बार
ीना को भी साथ रखिएगा।"

वे हँस दीं, "इसका मतलब है, अभी भी तुम्हारा डर-संकोच
हीं। कोई बात नहीं, यह धीरे-धीरे ही जाएगा। पर अब कम से कम
जान गई हो न कि यह डर तुम्हारे अपने भीतर का ज्यादा है, म
जी का कम! खैर, इसपर भी बाद में बात करेंगे।"

तभी से मैं सोच रही हूँ, क्या सचमुच यह प्रेम नहीं?......अब
जार है अगली बातचीत का।

अजीब उलझन है

लता और लीना

"हलो लता, क्या हालचाल हैं तुम्हारे नरेश के ?"

"कैसे पूछ रही हो ? नरेश मेरा कोई क्यों होगा ?

"बनो मत। क्या उसे लेकर ही तुम पिछले दिनों परेशान नहीं थी ?"

"थी, अब नहीं।"

"क्यों, क्या लड़ाई हो गई उससे ?"

"दोस्ती ही कब थी ?"

"अजीब लड़की हो तुम ! जब दोस्ती ही नहीं थी तो उसे लेकर इतनी भी क्यों थी ?"

"उलझी तभी न थी कि दोस्ती नहीं थी।"

"अब क्या दोस्त बना लिया उसे ?"

"नहीं।"

"तब ?"

"अब न दोस्ती है, न उलझन। फिर भी ।"

लगती हो।"

"अच्छा तो समझाओ, क्या है तुम्हारा संकल्प ?"

"उसे पाने का नही, उसका ख्याल छोड़ने का।"

"तो छोड़ दो ख्याल। दुनिया मे और लड़को का कोई अकाल तो नहीं पड़ गया ?"

"फिर मजाक ! हाँ, भई, क्यों न करो मजाक। तुम्हे आजादी है, सुविधा है, चाहे जिससे दोस्ती करो, जब चाहे तोड़ दो· ।"

"दोस्तियाँ ही करती हूँ न, उनके साथ उलझती तो नही ? यह क्या कि सहपाठी लड़को से भी बात न करो और जिस भोंदू से लड़के मे बात करने का भी साहस नही, उसे लेकर उलझते फिरो। पता नही, कब तुम इस कुंठा से मुक्त होओगी और कब तुम्हारा दिमाग ठिकाने आएगा ?" लीना ने लापरवाही से सिर को झटका दे माथे पर झूलती अपनी लटो को पीछे किया।

लता रुआंसी हो आई। नरेश के लिए 'भोंदू' शब्द उसे खल गया। पर वह लीना के खुले स्वभाव से परिचित है। उसके सुलझे दिमाग से इतनी अभिभूत है कि उसकी बात का उसने बुरा नही माना। उलटे सोच मे पड़ गई, ठीक ही तो कहती है लीना ! नरेश मुझसे उम्र मे, अनुभव मे बड़ा है। उसमें इतनी अक्ल तो होनी ही चाहिए कि केवल देखने से रहकर, आगे बढ़, दोस्ती का हाथ बढ़ाए। कम से कम बात करने का साहस तो दिखाए ! लगता है, वह भी मेरी तरह डरता है—पता नही, मेरे घर वालो से, या अपने घर वालो से, अपने से ही। सचमुच वह दोस्त बनने लायक है भी नहीं। फिर फिर भी न जाने क्यों मुझे अच्छा लगता है। आन क्यों ?

"किस सोच मे पड़ गई लतू ?" लीना ने टहोका तो उसे होश आया, "नहीं-नहीं, किसी सोच में नहीं हूँ मैं। बस अपने को ही समझने की कोशिश कर रही हूँ। ···मम्मी ठीक ही कहती थीं, 'पहले अपने आपको जानो।' यही तो···।"

बात है ! तुम मेरी मम्मी से मिल चुकी हो ! मैं भी · · ·से आया ? कब तक तो नरेश···नरेश, नरेश

ही लट्टू की तरह घूम रहा था तुम्हारे मन में, और अब एकदम उसका ख्याल छोड़ देने का संकल्प किया जा रहा है—खूब !" सीना ने फिर ठहाका लगाया।

मला फिर रोने-रोने को हो आई, "और तुम हँसो हँसो, खूब हँसो। यह नहीं कि मदद करके मुझे इस भँवर से निकालो !"

"यही तो कोशिश करती रहती हूँ। पर जिसे भँवर में डूबते-उतराने ही मजा आता हो, उसका कोई क्या करे ?"

"मुझे इसमें मजा आता है ?"

"और नहीं तो क्या, वर्ना सुनती न मेरी ?"

"क्या नहीं सुनती ?"

"यही कि झिझक छोड़ो और सहपाठी मित्र-मण्डली के बीच रहते समय अलग-थलग न रहो। सबके साथ घुलो-मिलो। वे कोई हौवा नहीं हैं कि तुम्हें खा जाएँगे। उनसे बोलो-बतियाओ। तुम्हारी कुंठाएँ कट जाएँगी।"

"यह क्या मेरे लिए भी उतना ही आसान है, जितना तुम्हारे लिए ?"

"क्यों नहीं, घर वालों से चोरी-छिपे कुछ मत करो तो वे जरूर विश्वास करेंगे। फिर हम किसी गलत रास्ते पर तो नहीं जा रहे ? कुछ गलत काम तो नहीं कर रहे ! भला मेल-जोल और सहज मैत्री पर किसी को क्यों ऐतराज होगा ?"

"तुम नहीं समझती सीना। समझने की कोशिश भी नहीं करती क्योंकि तुम्हें ऐसी किसी परिस्थिति का सामना नहीं करना पड़ा। मुझे कहना नहीं चाहिए, पर जानती हो, मेरी माँ तुम्हें अच्छी लड़की नहीं समझती। इसलिए तुम्हारे साथ भी मेरा अधिक मेलजोल उन्हें पसन्द नहीं और तुम लड़कों की बात करती हो ?"

"यह सब क्या मैं जानती नहीं ?"

"फिर भी—फिर भी तुम ऐसा कहती हो ? फिर भी तुम मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती ? तुम्हें अपने मानापमान का भी ध्यान नहीं ?

"मैं ऐसी बातों की परवाह नहीं करती। मेरे पापा-मम्मी मुझे अच्छ तरह जानते हैं; मुझपर पूरा भरोसा रखते हैं, फिर मैं दूसरों

लगती हो।"

"अच्छा तो समझाओ, क्या है तुम्हारा संकल्प ?"

"उसे पाने का नहीं, उसका ख्याल छोड़ने का।"

"तो छोड़ दो ख्याल। दुनिया में और लड़कों का कोई अकाल पड़ गया ?"

"फिर मजाक! हाँ, भई, क्यों न करो मजाक। तुम्हें आ सुविधा है, चाहे जिससे दोस्ती करो, जब चाहे तोड़ दो।"

"दोस्तियाँ ही करती हूँ न, उनके साथ उलझती तो नहीं ? कि सहपाठी लड़कों से भी बात न करो और जिस भोंदू से लड़ करने का भी साहस नहीं, उसे लेकर उलझती फिरो। पता नहीं इस कुंठा से मुक्त होओगी और कब तुम्हारा दिमाग ठिकाने" मीना ने लापरवाही से सिर को झटका दे माथे पर झूलती अप

ने भी कही थी। लगता है, लीना ने उनकी बातों को अपने में उतार लिया है। तभी तो लीना इतनी निश्चिंत है, इतनी सुलझी हुई है। लीना की मम्मी ने यह भी कहा था कि यह आकर्षण या यह लगाव या ख्याल प्रेम नहीं है। ठीक तो है, प्रेम होता तो ख्याल छोड़ने की बात ही कहाँ से आती ? तो फिर प्रेम क्या होता है ? क्या होता है प्रेम ?'

लीना ने पकड़कर झिंझोड़ा, "कहाँ खो गईं फिर ? तुम्हें तो पास खड़े-खड़े भी खोजना पड़ता है," तो लता के मुँह से अचानक फूटा, "अजीब उलझन है ?"

"क्या उलझन है ?"

"यही प्रेम-वेम अच्छा, तुम्हीं बताओ प्रेम क्या होता है, कैसे होता है ?"

लीना ने पहले उसी तरह एक ठहाका लगाया, फिर झुँझला उठी, "अजीब चनचक्कर हो तुम भी, प्रेम की परिभाषा क्या जरूरी है ? या वह इतनी आसान है कि उसे चंद शब्दों में बताया जा सके ? फिर अभी, इसी वक्त क्या जरूरत पड़ गई तुम्हें यह छानबीन करने की ?"

"अभी न सही, पर जानना-समझना तो चाहिए न !"

"तो इतना जान लो कि सिनेमा और सस्ते उपन्यासों में जो मूर्खता दिखाई जाती है, कम से कम वह तो नहीं ही है।"

"तो ?"

"मुझे नहीं मालूम, जब किसीसे होगा, तब बताऊँगी।" लीना फिर झुँझला उठी।

"तुम तो बात को टालती हो।"

"नहीं तो क्या करूँ ? और कुछ करने को नहीं है कि इस बात को लेकर बेकार में माथापच्ची करने बैठ जाऊँ ?··कहा न, नहीं जानती, जब जानूँगी, तब बताऊँगी।"

"तो दीपक के साथ महीनों रहकर तुम क्या करती रहीं ?"

"हम दोनों दो दोस्तों की तरह एक-दूसरे को जानने-समझते रहे। एक बार जरा-सी उलझी थी ··उससे नहीं, अपने आपसे—कि मम्मी ने शीघ्र सुलझा दिया। बस, उसके बाद कुछ नहीं। हम आज भी दोस्त हैं,

खुलकर ही पूछना-जानना होगा।' तभी अपने से उबरकर उसने लीना से पूछ लिया, "लीना, मैं इस रविवार को तुम्हारी मम्मी से फिर मिल रही हूँ। इस बार तुम भी साथ बैठो न प्लीज !"

"नहीं, मुझसे नहीं होगा यह। तुम जानो और मम्मी जानें। मुझे कुछ नहीं समझना है।"

"न सही। पर क्या, मेरे लिए तुम साथ भी नहीं बैठ सकती ?"

"क्यों, तुम्हें अकेले क्या होता है ? क्या मेरी मम्मी से भी डर लगता है तुम्हें ?"

"नहीं, उनसे डर बिल्कुल नहीं लगता। फिर भी वे बड़ी हैं, मेरी माँ समान हैं। उनसे झिझक तो लगती ही है न !"

"तब हो चुका तुम्हारा कल्याण। झिझक लेकर बैठो और इसी तरह अपने आपमें उलझती रहो।"

"प्लीज लीना ।"

"पहले वायदा करो।"

"क्या ?"

"यही कि तुम झिझकोगी नहीं। खुलकर बातचीत करोगी। प्रश्न भी तुम्हीं करोगी, मैं नहीं। मुझे कुछ बोलना होगा, तो बोलूँगी, वर्ना केवल सुनूँगी।"

"ठीक है। मंजूर है, तुम्हारी शर्त। पर तुम बैठना जरूर कि मेरी हिम्मत बंधी रहे। जानती हो, मम्मी ने क्या कहा था ?"

"क्या कहा था ?"

"यही कि अगली बार ऐसे छुईमुई होने से नहीं चलेगा। कुछ जानना-समझना है तो मन की गाँठें खोलनी होंगी। इसके लिए तैयार होकर आना।"

"यही तैयारी है तुम्हारी कि मुझे साथ बाँध रही हो ?"

"नहीं-नहीं, मैं सचमुच तैयार होकर आऊँगी, तुम देखना तो सही। पास रहोगी, तभी न देखोगी कि मैं तुम्हारी आशाओं के अनुरूप चल रही हूँ कि नहीं। तुम्हारी शिकायत भी तो दूर करनी है कि नहीं मुझे ?"

"चलो, कुछ साहस तो आया तुममें। अब देखना है, तुम क्या करती

पर परस्पर उलझे हुए नहीं। साथ-साथ खेलने जाते हैं। बातचीत करते हैं —केवल सिनेमा, हीरो-हीरोइन या लड़के-लड़कियों पर ही नहीं, हर विषय पर, रुचियों पर, हॉबियों पर। अपनी रुचियों और विचारों का परस्पर आदान-प्रदान करते हैं। एक-दूसरे से कुछ सीखते-समझते हैं। एक-दूसरे को लेकर आहें नहीं भरते, रातों की नींद हराम नहीं करते—समझीं!"

"अब न सही, पर सच बताना, क्या उन दिनों भी तुम्हें दीपक को लेकर कुछ नहीं होता था?"

"शुरू में, कुछ दिन ऐसा लगा था, फिर जल्दी ही पता चल गया कि वह प्रेम नहीं था।"

"कैसे पता चल गया? क्या बिना जाने कि प्रेम क्या होता है?"

"हाँ, बिना जाने। पर सच, यदि सच मानो तो आज भी मैं ठीक-ठीक नहीं जानती कि प्रेम क्या होता है। मुझे भी उसकी खोज है। जिस दिन जानूँगी, जरूर बताऊँगी। पर यह जरूर जानती हूँ कि दीपक न तब मेरा प्रेमी था, न अब है। फिर भी हम अच्छे दोस्त हैं। एक-दूसरे की इज्जत करते हैं। हमारे इस सम्बन्ध में स्नेह भी है, लगाव भी, पर प्रेम की संज्ञा इसे नहीं दी जा सकती। कम से कम इस स्तर पर तो मैं इस बारे में सोच भी नहीं सकती।"

"फिर ?"

"आगे के बारे में कुछ नहीं कह सकती मैं अभी। हमारे बीच प्रेम विकसित हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। होगा, तो भी यह विकास सहज होना चाहिए—नहीं? जबरदस्ती इस दिशा में क्यों सोचने लगूँ मैं?"

"इसका मतलब है, प्रेम अचानक नहीं होता, धीरे-धीरे विकसित होता है?"

"हाँ, मुझे तो अभी तक यही मालूम है। पर मैं सबके बारे में क्या जानूँ? और क्यों जानूँ? हम अपने आपको जानें, क्या यही काफी नहीं है?"

लता फिर अपने भीतर डूब गई, घूम-फिरकर बात फिर वहीं आ जाती है, 'स्वयं को जानो'। लेकिन कैसे? इस बार सोना की मम्मी से

"तो फिर क्या है प्रेम ?

लता, लीना और लीना की मम्मी

"आ गई बेटी ! बैठो। लीना भी आज घर ही है। अभी तुम्हारा इन्तजार ही कर रही थी। लो, वह आ गई। तुम दोनों बैठो, मैं अभी चाय बनाकर लाती हूँ। फिर इतमीनान से बैठकर गपशप करेंगे।" कह-कर लीना की मम्मी उठ खड़ी हुई कि लीना ने आकर अपनी लाड़-भरी बाँहें फैलाईं और उन्हें कंधों से पकड़कर बैठा दिया, "नहीं मम्मी, आप लोग बैठकर बात करो, चाय मैं बनाकर लाती हूँ।" और वह फुदकती हुई रसोईघर की ओर बढ़ गई।

"चाय और गपशप !" लता संकोच में भर आई। "इस हलके-फुलके वातावरण में गंभीर चर्चा के लिए तो कोई गुंजाइश ही नहीं दीखती। शायद लीना की मम्मी भूल गई हैं कि उन्होंने मुझे आज किसलिए बुलाया था। नहीं नहीं, गंभीरता की बात ही क्या है इसमें ? कोई समस्या तो नहीं उठ खड़ी हुई है मेरे साथ कि उसे लेकर यूँ गंभीर हुआ जाए ! वह तो मुझे ही न जाने क्या हो जाता है कि बात का बतंगड़ बना, चिंतित हो उठती हूँ और गंभीरता ओढ़ लेती हूँ। लेकिन क्या सचमुच मैं इसे ओढ़ती हूँ ? क्या मैं भीतर से ही ऐसी नहीं हो गई हूँ ? मैं ही क्यों, मेरे जैसी स्थिति में कोई भी ऐसा हो सकता है। जैसे हालात होंगे, स्वभाव भी तो वैसा ही बनेगा !" सिर झुकाए, अपनी चुन्नी का कोना उमेठते, लता मन ही मन यह गुन रही थी और सामने बैठी लीना की मम्मी चुपचाप उसकी इस भाव-भंगिमा को पढ़ रही थीं। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद उन्होंने लता को जैसे सोते से जगाया, "पढ़ाई कैसी चल रही [illegible] बेटी ?"

"अं· ठीक ही चल रही है मम्मी। नहीं-नहीं, कुछ खास नहीं चल

हो और कितना बदलती हो ! अच्छा तो फिर मिलेंगे । मम्मी को बोल दूंगी, तुम रविवार को आओगी और बातचीत के लिए तैयार होकर आओगी ।"

नहीं, इतना ही बोलना, कि आऊंगी ।"

"बस, यहीं बदलने लगीं ?"

"नहीं, पहले देखूं तो सही !"

"किसे ?"

"अपने आपको, और किसे ?"

"अच्छा बाबा, देखो, खूब अच्छी तरह देखो । मैं तो चलती हूं अब । [illegible] ।' दोनों [illegible] — [illegible] सीना [illegible] ।

तो फिर क्या है प्रेम ?

लता, सीना और सीना की मम्मी

"आ गई बेटी ! बैठो। सीना भी आज घर ही है। अभी तुम्हारा इन्तजार ही कर रही थी। लो, वह आ गई। तुम दोनों बैठो, मैं अभी चाय बनाकर लाती हूँ। फिर इत्मीनान से बैठकर गपशप करेंगे।" कह-कर सीना की मम्मी उठ खड़ी हुई कि सीना ने आकर अपनी लाड़-भरी बाँहें फैलाईं और उन्हें कंधों से पकड़कर बैठा दिया, "नहीं मम्मी, आप लोग बैठकर बात करो, चाय मैं बनाकर लाती हूँ।" और वह फुदकती हुई रसोईघर की ओर बढ़ गई।

"चाय और गपशप !" लता संकोच मे भर आई। "इस हलके-फुलके वातावरण मे गंभीर चर्चा के लिए तो कोई गुंजाइश ही नहीं दीखती ! शायद सीना की मम्मी भूल गई हैं कि उन्होंने मुझे आज किसलिए बुलाया था ! नहीं नहीं, गंभीरता की बात ही क्या है इसमें ? कोई समस्या तो नहीं उठ खड़ी हुई है मेरे साथ कि उसे लेकर यूँ गंभीर हुआ जाए ! वह तो मुझे ही न जाने क्या हो जाता है कि बात का बतंगड़ बना, चिंतित हो उठती हूँ और गंभीरता ओढ़ लेती हूँ। लेकिन क्या सचमुच मैं इसे ओढ़ती हूँ ? क्या मैं भीतर से ही ऐसी नहीं हो गई हूँ ? मैं ही क्यों, मेरे जैसी स्थिति मे कोई भी ऐसा हो सकता है। जैसे हालात होंगे, स्वभाव भी तो वैसा ही बनेगा !" सिर झुकाए, अपनी चुन्नी का कोना उमेठते, लता मन ही मन यह गुन रही थी और सामने बैठी सीना की मम्मी चुपचाप उसकी इस भाव-भंगिमा को पढ़ रही थीं। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद उन्होंने लता को जैसे सोने से जगाया, "पढ़ाई कैसी चल रही है बेटी ?"

"हं···ठीक ही चल रही है मम्मी। नहीं-नहीं, कुछ ध्यान नहीं लग

रही। दरअसल ।"

"दरअसल तुम आजकल अपने आपे में नहीं हो, यही न ?"

"नहीं-नहीं, मेरा मतलब था ।"

"चलो, कुछ भी मतलब था तुम्हारा, छोड़ो इस बात को। जाओ, देखो तो चाय में क्या देर है ? जाकर लीना की मदद कर लो और जल्दी लेकर आ जाओ। आज तो न जाने क्यों, मुझे भी चाय की बहुत तलब लग रही है !" उन्होंने युक्ति से लता को भीतर से बाहर खींच लिया।

"जी अच्छा, अभी लाती हूँ," कहकर लता भी मथर गति से रसोई-घर की ओर बढ़ गई। उसने स्वयं को कुछ हलका महसूस किया।

अब लीना की मम्मी सोच रही थी, 'क्या हालत कर दी है इसकी माँ ने इसकी ! बेचारी खुलकर बोल भी नहीं पाती। पर इसे आज खोलना ही होगा। यहाँ, मेरे पास नहीं खुलेगी तो फिर घर में तो कभी नहीं खुल सकती। और अभी इस उम्र में बन्द रह जाएगी तो शायद जीवन-भर न खुल पाए। तब कैसी होगी इसकी जिन्दगी, कैसे होंगे इसके दाम्पत्य सम्बन्ध, कुछ कहा नहीं जा सकता। हाँ, इसकी सोच, इसकी गंभीरता देखकर लगता तो है कि मन ही मन स्वयं को तैयार कर रही है—कुछ पूछने, कुछ जानने और कुछ खुलने के लिए। पर बेचारी आदत से मजबूर हो, सहम-सिकुड़ चुकी है। इसके साथ बहुत सूझबूझ से काम लेना होगा मुझे। पहले तो इसे हलके मूड में लाना चाहिए, अन्यथा बात बनेगी नहीं, उल्टे बिगड़ सकती है। किसी भी तरह इसे अपने को अपमानित अनुभव नहीं करना चाहिए। न ही लीना के सामने उसे छोटा पड़ना चाहिए। तभी शायद खुले और अपने भीतर शक्ति-संचय कर सके। बस यह गति-प्रारंभ ही तो देना है उसे। आगे चालन-शक्ति भी उसकी होगी और राह भी उसकी अपनी होगी। देखती हूँ, कितनी सफलता मिलती है मुझे इसके साथ ! वास्तव में यह परीक्षा इसकी नहीं, मेरी होगी।'

तभी चाय आ गई और उसके साथ ही आ गई लीना की चहचहाहट, जो लता को और सकुचाए जा रही थी। प्यालों में चाय डालते लीना कह ही तो उठी, "मम्मी, आज तो लता जमकर तैयारी करके आई है। आप-से चर्चा करके जानना-समझना चाहती है कि अभी वह जहाँ, जिस तरह

उलभी है, यदि वह प्रेम नहीं है, तो क्या होता है प्रेम? मुझसे भी पूछ रही थी। मैं तो नहीं बता पाई, अब आप ही इसे बताइए। मैं तो बस इतना जानती हूँ…"

"खाक जानती हो तुम," मम्मी ने भाँपा और लीना को किसी तरह नियंत्रण में लाने की कोशिश करने लगी, "केवल बडबड बहुत करती हो। लता तुमसे अधिक जानती है। तुम तो न किसी बात को ध्यान से सुनती हो, न गंभीरता से लेती हो, जानोगी क्या खाक! अगर लता को तुम्हारे जैसी स्वतन्त्रता मिलती, सुविधाएँ मिलतीं, तब देखती, यह क्या करके दिखाती! अभी भी तुम देखना, तुमसे आगे बढ़कर न दिखाए तो! इसकी जिज्ञासा ही इसकी राह खोलेगी।"

लता को राहत मिली, प्रोत्साहन मिला, पर वातावरण हलका नहीं हुआ। तभी लीना बोल पड़ी, "तो हो जाइए शुरू। जिज्ञासा और समाधान के बीच में टाँग नहीं अड़ाऊँगी। मैं चली।" और लीना यह जा, वह जा।

लता हैरान-सी उसे देखती रह गई। मम्मी की झिड़की पर भी लीना की यह आनन्दी प्रतिक्रिया! खूब! काश, वह भी ऐसी बन पाती! एक क्षण की चुप्पी। फिर वह स्वयं को सहेजने लगी 'उह, जाने दो, सचमुच यह तो बात करने ही नहीं देगी।' उसने उठकर लीना को जाने से रोका नहीं। अपनी नजरें उठाकर मम्मी पर टिका दीं, "मम्मी, प्रेम को अंधा क्यों कहा जाता है, प्रेम क्या अंधा होता है?"

"नहीं, प्रेम अंधा नहीं होता, वासना अंधी होती है, जिसे होश तभी आता है, जब पानी सर से गुजर जाता है या कोई हादसा घट जाता है।"

"और वासनारहित प्रेम?"

"किशोर-किशोरियों में सहज आकर्षण की बात को प्रायः इसी रंग में रंगते देखा गया है। अक्सर लड़के-लड़कियाँ अपनी रोमानी भावना को 'वासनारहित प्रेम' की संज्ञा देकर स्वयं को फुसलाते रहते हैं और दूसरों के आगे अपनी सफाई पेश करते रहते हैं। पर मैं तुम्हें बताना चाहती हूँ कि वासनारहित प्रेम का क्षेत्र किसी एक लड़के-लड़की तक सीमित नहीं होता। उसका दायरा तो सारे संसार तक फैला हो सकता है, मनुष्यों से

लेकर पशु-पक्षियों तक। जिस व्यक्ति का मानसिक व भावात्मक विकास जिस स्तर तक होगा, उसका यह दायरा भी उतना ही बड़ा होगा। जहाँ तक विपरीतलिंगी किसी एक व्यक्ति के साथ गहरे लगाव का प्रश्न है, यह प्रेम वासना से एकदम मुक्त नहीं हो सकता। ऐसा प्रेम न मात्र भावुकता है, न मात्र वासना। प्रेम के उदय से लेकर यौन-सम्बन्ध तक उसके विकास के कई स्तर हो सकते हैं। पर उसे वासना से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसलिए वासनारहित प्यार की धारणा भी सही नहीं है। इसे तब तक एक रोमानी खुमार कह सकते हैं जब तक कि उसे स्पर्श-सम्पर्क के अनुभव का अवसर नहीं मिलता।"

"तो क्या वासना जरूरी है ?"

"एक स्तर पर, एक सीमा पर जाकर। लेकिन वासना ही प्यार है, यह कहना या मानना प्यार को सस्ता बनाना है। जो प्यार वासना की दृष्टि से शुरू होता है और यौन-सतुष्टि पर समाप्त हो जाता है, वह प्यार नहीं होता। मात्र यौन-भूख होती है।"

"भूख ?"

"हाँ, भूख। पर सेक्स की भूख और पेट की भूख समान होती है, यह धारणा भी एक बहुत भ्रामक धारणा है, जिसने समाज में बहुत गड़बड़ियाँ और विकृतियाँ फैलाई हैं। इसी भ्रामक धारणा और उसके दुष्परिणामों के कारण ही अब 'फ्रायडवाद' को सारे संसार में नकारा जा रहा है। पेट की भूख को किसी साधना या उदात्त भावना से जोड़कर रोका नहीं जा सकता। पर सेक्स की भूख को सहज ही एक सीमा में रखा जा सकता है और उदात्त भावना से जोड़कर व्यक्तित्व-साधना द्वारा या मन की गतियों को दूसरी ओर मोड़कर उसपर पूरी तरह काबू भी पाया जा सकता है। पेट की भूख मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है, उसके जीवित रहने की शर्त है, जबकि सेक्स की भूख उसकी आदत है और अन्य कई प्राकृतिक आवश्यकताओं में से एक। इस अन्तर को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। मनुष्य की अनुभूति और साधना दोनों से इसकी पुष्टि होती है।"

लता कान जमाए गौर से सुन रही थी कि लीना फिर बीच में आ टपकी। अन्तिम वाक्य सुनकर उसने कहा, "लेकिन मम्मी, सेक्स को इस

कदर होता भी क्यों बनाया जाना चाहिए ?"

"बिल्कुल नहीं बनाया जाना चाहिए। लेकिन उसकी सीमाएँ तो पहचाननी ही होंगी न! दुर्भाग्य से आज अधिकांश लड़के-लड़कियों ने प्यार को सेक्स के अर्थ में ही लेकर उसे सस्ता बना दिया है, जिसमें एक-दूसरे की भावनाओं का आदर, एक-दूसरे के हितों का ध्यान, उनके लिए त्याग-बलिदान, परस्पर विश्वास या वफादारी जैसी जरूरी बातों का स्थान गौण हो गया है। तभी तो वह जल्दी ही सन्देह, घृणा, क्रूरता जैसी बुराइयों में बदलने लगता है और उसके भयंकर परिणाम सामने आते हैं। विवाह के पूर्व ही नहीं, विवाह के बाद भी। अधिकांश घरों में आज दाम्पत्य-दरारों, कलह, तलाक, आत्महत्या तक की स्थितियों के लिए यह सन्देह, अविश्वास ही मुख्य रूप से जिम्मेदार है, नाम फिर चाहे उसे 'दहेज पर झगड़ा', 'रुचियों-विचारों का टकराव' या कुछ भी दिया जाए। परस्पर विश्वास ही न हो तो निभाव की स्थिति बन कैसे सकती है! और जबरदस्ती का निभाव तो जिन्दगी में जहर घोलेगा ही।

"इसलिए जरूरी है, प्रेम को समझदारी, जिम्मेदारी और वफादारी के साथ जोड़कर देखना। सच्चा प्यार गहराई और जिम्मेदारी या वफादारी से रहित होता भी नहीं। इसीलिए बहुत जरूरी है, उसे जल्द-बाज कच्ची भावुकता और सस्ती वासना दोनों से बचाकर अपनी सर्वोत्तम निधि के रूप में सँजोकर रखना कि समय पर अपने भीतर ■ इस सर्वोत्तम को अपने 'सर्वप्रिय' को समर्पित किया जा सके। प्यार, विश्वास व

होगा। दुनिया में ऐसे भावुक प्रेमियों की भी कमी नहीं जिनके लिए 'पहली नजर का प्यार' ही सब कुछ होता है और इसी के सहारे वे अपने जीवनसाथी की अनेक कमियों को जीवन-भर निभा ले जाते हैं। आखिर बिना एक-दूसरे को पूर्व देखे-परखे माँ-बाप द्वारा तयशुदा शादियों में भी तो ऐसा होता है कि मगनी पर या ब्याह के बाद पहली नजर पर ही नजर ठहर गई तो ठहर गई। लेकिन हकीकत यह है कि उस नजर में केवल क्षणिक आकर्षण न होकर 'प्यार के सहारे का विश्वास' हो, तभी उसके सहारे जिन्दगी कटती है। इसे शायद यूँ कहना अधिक सही होगा कि इस परस्पर सहारे से प्यार का क्रमश: विकास होता जाए, तभी जिन्दगी की बाजी जीती जा सकती है, अन्यथा देख ही रही हो, आज चारों ओर क्या हो रहा है? चार दिन हँसी-खुशी, मौज-मस्ती, फिर निभाव की जिम्मेदारी सिर पर आते ही अपने-अपने स्वार्थ और अपने-अपने अहं परस्पर टकराने लगते हैं। इसीलिए आज भौतिक युग में प्रेम में इस तरह की भावुकता को अपरिपक्व समझ की अव्यवहारिकता या बीते समय की बात माना जाने लगा है। अब तो आगा-पीछा देखकर, खूब सोच-समझकर ही इस ओर कदम बढ़ाए जाने चाहिए।"

ममा फिर अपने भीतर गहरे उतरने लगी थी। सीमा ने आकर उन्हें उबार लिया, "लो मम्मी, चाय आ गई, नाश्ता भी। अब प्लीज, आज की यह बात यहीं खत्म। नहीं तो लता बेचारी इतनी बड़ी 'मैंटल डोज' को एकदम पचा नहीं पाएगी और घबरा जाएगी।" चाय में चीनी हिलाते हुए वह फिर चहकी, "पर मम्मी, सही माने में प्यार क्या होता है, यह बात तो पूरी तरह साफ हुई ही नहीं?"

"तुमने सुनीं ही कहाँ सारी बातें? देर तक एक जगह टिककर बैठना तुम्हारे बस की बात नहीं। फिर·"

"नहीं मम्मी, मैं उधर रहकर भी सुन ही रही थी, केवल आप दोनों को 'डिस्टर्ब' नहीं करना चाहती थी—खासकर लता को। आपको इसी विषय पर लता को एक बार और समय देना होगा और बात को साफ तौर पर समझाना होगा। मैं भी साथ बैठूँगी। मेरा मन भी इसपर एकदम स्पष्ट होना चाहिए। अभी तो--।"

"यही तो मैं कहना चाह रही थी कि 'फिर एक बार बैठो' और
बीच में ही टोक दिया। सचमुच बात पूरी तरह साफ नहीं हुई। प
यह भी है कि इसे पूरी तरह समझाया ही नहीं जा सकता। सबको
अपने अनुभव से समय पर अपना-अपना सच हाथ लगता है। 'ि
प्यार क्या है और यह जिन्दगी का सहारा कैसे बन सकता है,
अगले रविवार को मैं फिर तुम लोगों से बात करूँगी। आधुनिक भ
समाज में भारतीय संस्कृति व मानसिकता के अनुकूल 'डेटिंग' क
विकल्प हो सकता है, इसपर भी।"

मम्मी की इस बात पर लीना खिल उठी। उसने लता की पीठ
"देखा लता, मेरी मम्मी का तुम्हारे प्रति पक्षपात! जो बातें अभ
मेरे साथ भी खुलकर नहीं की जा सकीं, वे तुम्हारे साथ करने के
मम्मी कितनी जल्दी तैयार हो गईं! अब बताओ, कौन खुशकिस्म
मैं या तुम?"

लता भीतर से भर आई और माँ-बेटी के व्यवहार से अभिभू
दोनों से विदा ले, आत्मगौरव से भरे-भरे डग भरती अपने घर की
चल पड़ी—मन में अगली मीटिंग की उत्सुक-आकुल प्रतीक्षा लिए।

सहज पाने और अर्जित करने में फर्क है

सोना और सोना की मम्मी

"क्यों सीना, तुम्हारी वह छुईमुई-सी सहेली अभी आनेवाली है न ?" सीना की मम्मी ने बाहर से आकर पर्स टेबल पर रखते हुए पूछा।

"कौन ? लता ? हां, सोलह आने आनेवाली है, आए बिना वह रह ही नहीं सकती। पर मम्मी, अब वह वैसी छुईमुई नहीं है। उस दिन भी पहले जैसी कहां थी ! मैं तो देखकर हैरान हो रही थी कि इतने प्रश्नों पर उसकी जुबान खुली कैसे ? वहां तो हम-उम्र साथियों में भी उसकी बोलती बन्द थी, कहां ..."

"उसकी बोलती बन्द नहीं थी, तुमने और तुम्हारी चर्चित मित्र-मण्डली ने उसकी बोलती बन्द कर रखी थी। यदि घर का वातावरण उसे खुला हुआ नहीं मिला तो यह न उसका दोष था, न तुम लोगों के मजाक का विषय। तुम्हें चाहिए था, उसे सहानुभूति-सहारा देकर उसका आत्म-विश्वास बढ़ाना और उसे खोलना, न कि उसे उसके हीनभाव में और दबाकर उसकी रही-सही बोलती बन्द कर देना !"

"आप भी कमाल करती हैं मम्मी ! कोई और लड़की होती तो कब से उसे झटककर अलग कर चुकी होती। वह तो मैं थी कि उस जैसी बोर, गूंगी और झिझकू लड़की को फिर भी अपनाए रही। शायद यह आपकी दी हुई शिक्षा-सहकारिता का ही फल था कि उसे लेकर अपने दोस्तों के बीच हंसी का पात्र बनते हुए भी मुझे उसके साथ सहानुभूति बनी रही। नहीं तो वह यहां आप तक कैसे पहुंचती ?" सीना ने मम्मी की आंखों में सीधे झांका।

"ठीक है पर तुमने उसके लिए यह किया वह किया,' तुम्हारी इस

बात से भी तुम्हारे अहं की गंध आ रही है। तुम्हारी यह बड़प्पन की भावना ही उसे दबाती आई है। पर याद रखो मीना, घर से कुछ न मिलने पर भी उसमें कुछ सीखने-समझने की ललक थी, अपने भीतर गहरा हीन-भाव पालते हुए भी उससे मुक्ति पाने की छटपटाहट उसमें थी, दुनिया को और संसार-व्यवहार को जानने की जिज्ञासा थी, तभी न सब कुछ सहते हुए भी वह तुम्हारे साथ चिपकी रही और तुम्हारे माध्यम से यहाँ तक पहुँची। यह बड़प्पन तुम्हारा नहीं, उसका है कि तुम्हें जो सहज रूप से मिल रहा है, उसे वह अर्जित कर रही है। बोलो है कि नहीं?" मम्मी ने भी मीना की आँखों में उसी तरह सीधे झाँककर उससे इसका उत्तर पाना चाहा।

मीना भड़की नहीं, गम्भीर हो आई, बात शायद कहीं उसके मर्म को छू गई थी। अपनी धारणा के विपरीत उसने सहज स्वर में कहा, "शायद आप ठीक कहती हैं मम्मी। सहज पाने और अर्जित करने में फर्क होता है। पर क्या आप यह नहीं जानतीं कि सहज प्राप्त चीजों में भी कुछ 'अर्जित' करना पड़ता है। [illegible] संस्कार में जो सहज प्राप्त है बातों से [illegible] क्या मुझे वह अर्जित नहीं करना पड़ा? आज के इस खुले माहौल में अपनी अस्मिता को बचाकर चलना क्या बहुत आसान है?" कहते हुए मीना का सिर कुछ और ऊँचा हो गया।

मम्मी मुस्कराती हुई उसे देखती रह गईं उनकी आँखों में प्यार भर आया था, "[illegible] सचमुच यह सब करने लायक बात है। इसीलिए मुझे तुम पर गर्व है। इसीलिए तुम पर तुम्हारे व्यक्तित्व पर मुझे गहरा विश्वास है। और सन्तोष है कि दोनों लड़कियाँ उम्र से भी कुछ [illegible] [illegible] हैं। [illegible] स्वच्छता और [illegible] संयम और संतुलन — इन दोनों स्थितियों को [illegible] साथ है, अपनी-अपनी चुनौतियाँ हैं। [illegible]

[illegible]

[illegible]

......बड़प्पन की भावना कतई बुरी भावना नहीं। उसे अपने तई रखें तो वह व्यक्ति को भीतर से बाहर ठेलती है, नीचे से ऊपर उठाती है। पर उसे दूसरों पर थोपने का प्रयत्न करें या उसके प्रदर्शन पर थूक में अंकुश न लगाएँ तो आगे चलकर वह व्यक्तित्व-हानि का कारण बन सकती है। बस मेरा आशय इतना ही था—समझ रही हो न !"

"हाँ मम्मी, समझ रही हूँ। कोशिश करूँगी कि आपको इस बारे में आगे शिकायत का मौका न दूँ। पर मेरी प्यारी मम्मी," गले में बाहें डालते हुए, "यह बड़प्पन की भावना भी क्या आपकी ही दी हुई नहीं है ? आपको मुझपर इतना भरोसा तो रखना ही चाहिए कि लगे, आपको मेरी फिक्र है और मैं आपकी निगरानी में सुरक्षित हूँ। आत्म-अनुशासन ही काफी नहीं है, आपका अनुशासन भी चाहिए।" एक लाड़-भरी टेढ़ी शिकायती नजर।

"हाँ, तुम ठीक कहती हो। इस किशोर उम्र में आत्म-अनुशासन शायद आसान नहीं होता। माँ-बाप का अनुशासन, उनकी निगरानी भी चाहिए। पर तुम क्या समझती हो, तुम मेरी निगाह की परिधि से बाहर हो ? नहीं, मेरी निगाह ही नहीं, सतर्क निगाह है तुम पर; तुम्हारे चारों ओर। ऐसे ही थोड़े न इस तरह पूरे विश्वास के साथ तुम्हें दोस्तों के साथ बाहर भेज देती हूँ। इतनी समझदार बिटिया हो तो माँ को क्या फिक्र ! ......पर मुझे फिक्र होती है, तभी न तुम्हारी बाहर की सभी गतिविधियों की भी खबर रखती हूँ।"

"सच ! वह कैसे ?" लीना किलकी।

मम्मी ने लाड़ से लीना के गाल पर हल्की चपत लगाई, "सब तुम्हें क्यों बताऊँ ? पर दीपक को क्या मैं जानती नहीं ? क्या वह भी मुझसे मिलता नहीं या इसी तरह खुलकर बात नहीं करता ? मुझे मालूम है, जब कभी तुम कोई निर्णय लोगे, मुझसे छिपा नहीं रहेगा। फिर ?"

"तो यह बात है ! आप मेरी जासूसी भी करती हैं ? नहीं मम्मी, आपको जासूसी करने की कोई जरूरत नहीं। मेरे लिए यह जानकारी ही काफी संतोषप्रद है कि आपको मेरी इतनी फिक्र है। आप निश्चित रहें, मैं आपसे पूछे बिना ऐसा कोई कदम नहीं उठाऊँगी जिससे आपको बुरा लगे या शर्मिंदा होना पड़े। दीपक मेरे साथ है तो मुझे दूसरे लड़कों से भी कोई

घर नहीं। सारी 'अंडरस्टैंडिंग' है हम दोनों के बीच। फिर मैं कहीं कोई दिक्कत पेश आई तो आपको जरूर बताऊँगी। आपसे अच्छी सलाह मुझे और कौन देगा? समय पर पूरा सहयोग भी मिलेगा, ऐसा मुझे विश्वास है।"

"पर मामा को गलत लिया हुआ है, मुझे नहीं, यह बात तुम्हें दिमाग में आई कैसे?"

"कभी-कभी, जब किन्हीं छोटे या बूढ़े लड़कों से निपटना पड़ता है तब दिमाग में ऐसी बात उठती ही है कि हमसे तो वे लड़कियाँ ही अच्छी हैं, जिन्हें बंधन तो हैं पर उनके साथ उन्हें पूरी सुरक्षा भी मिली है। क्या आज के वातावरण में कभी-कभी ऐसी सोच स्वाभाविक नहीं?"

"बिल्कुल स्वाभाविक है। पर इसे प्रतिक्रिया भी तो कह सकते हैं- जिसे जैसा माहौल अपने आस-पास मिला हुआ है, उसके प्रति प्रतिक्रिया। लता पर और तुम पर यह बात समान रूप से लागू होती है। भले ही दोनों की प्रतिक्रिया भिन्न हो। हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। चूँकि सिक्के का एक पहलू ही ज्यादा चलता रहा है अभी तक हमारे समाज में, इसलिए 'बंधन के साथ सुरक्षा' या 'सुरक्षा के लिए बंधन' की बात ही लोगों को भली लगती है। वक्त के साथ चलने के लिए हमारी सामाजिक दृष्टि अभी इतनी नहीं बदली है कि स्वतन्त्रचेता लड़कियों को समाज की प्रशंसा दृष्टि का प्रोत्साहन मिले, इसलिए उनके सामने पग-पग पर कठिनाइयाँ हैं। अक्सर उन्हें सस्ता या सहज उपलब्ध समझ लिया जाता है।

"इसका कारण आज के समाज का मूल्यहीन भोगवादी माहौल भी है और इसकी जिम्मेदार स्वयं वे लड़कियाँ-स्त्रियाँ भी हैं, जिन्होंने आजादी का दुरुपयोग किया है और स्वयं को छोटी-मोटी सुविधाओं के लिए सस्ता या भोग्या बना लिया है। पर सभी इस माहौल से डरकर वापस घरों में बंद हो जाएँ तो फिर शिक्षण-प्रशिक्षण, आजादी-प्रगति के क्या मायने हैं? इसलिए डरने की नहीं, स्वयं को संभालकर, साधकर चलाने, आगे बढ़ाने की ही जरूरत है। ज्यादा तादाद में लड़कियाँ स्वतन्त्रचेता संस्कार लेकर आगे आएँगी और आजादी को जिम्मेदारी के साथ जोड़कर देखेंगी, तभी न यह माहौल बदलेगा। जब तक यह बदलाव नहीं आता, तुम्हारे

जैसी लड़कियों को अतिरिक्त समझदारी, अतिरिक्त साहस से आगे आना होगा ताकि दूसरी लड़कियों के लिए राह खुले।"

वातावरण जरा गम्भीर हो चला था, तभी सामने से लता को आता देख लीना फिर चहक उठी, "लो, वह आ गई लता, पहले तो इसी की राह खोलो। "पर मम्मी, पहले चाय हो जाए जरा, फिर आज प्रश्नों की पहल मेरे हाथ रहेगी। अभी आज तो आपने मुझे इतना झकझोर दिया है कि मैं भी अब जरा गम्भीर होना चाहती हूँ कि स्वतन्त्र निर्णय लेते समय मुझे अपने आपसे उलझना न पड़े।"

"हाँ, जरूर-जरूर। जो जानना चाहती हो जानो, समझो, अपने भीतर स्पष्ट होओ, पर बहुत गम्भीर होने की जरूरत नहीं। चलो, अब दोनों मिलकर पहले चाय पिलाओ। फिर इतमीनान से अगली बात।"

भीतर का सर्वोत्तम और समर्पण

सीना, लता और मम्मी

"हाँ तो मम्मी, उस दिन आप लता को ऐसा कुछ बता रही थीं 'अपने भीतर के सर्वोत्तम और ...' मैं ठीक से सुन नहीं पाई। शायद आपने ठीक से समझाया भी नहीं। आज वहीं से शुरू करो न प्लीज़!" चाय की चुस्कियों के बीच आज सीना ने सचमुच 'पहल' अपने हाथ में ली थी।

लता उसका मुँह देखती रह गई, 'सीना भी इस तरह बैठकर बात को गम्भीरता से ले सकती है! ... चलो अच्छा है। आज शायद अधिक खुलकर चर्चा हो सकेगी। मुझे तो कोई बात ठीक से समझ में नहीं आती तो मैं मम्मी को टोककर पूछने का साहस ही नहीं जुटा पाती। सोचकर रह जाती हूँ, 'फिर कभी पूछ लूँगी।' तो यही ठीक रहेगा। सीना अगर खुलकर पूछेगी तो मुझे भी इसका लाभ मिल जाएगा और ...।' तभी मम्मी की आवाज सुनकर वह चौकन्नी हो आई।

मम्मी कह रही थीं, "हाँ सीना, तुमने आज 'सर्वोत्तम' और समर्पण का प्रश्न उठाया है न! शायद तुम दोनों ही इसे समझना चाह रही हो! पर मुझे ऐसा नहीं लगता कि इसमें ऐसी कोई रहस्यमयी बात या अनबूझ पहेली है, जो तुम्हारी समझ से बाहर हो। फिर भी इस बात को गंभीरता से लोगी तो मैं जरूर बताना-समझाना चाहूँगी।

"तो सुनो, पहली बात है, प्यार को प्यार के सही अर्थ में जानना। प्यार का अर्थ है, मन की सारी कोमल भावनाओं, अनुभूतियों और सद्-इच्छाओं को समेटकर, अपनत्व में लपेटकर, अपने भीतर के इस 'सर्वोत्तम' को अपने सर्वाधिक 'प्रिय' को समर्पित करना। प्रिय, जो अपनी सारी

खूबियों और कमियों के साथ स्वीकार्य हो। अनुभूतियों को अपनत्व में लपेटने का आशय यही है कि जहाँ अपनेपन की भावना होती है वहाँ किसी 'अपने' की खूबियाँ ही स्वीकार्य नहीं होती, उनके साथ उसकी कमियों को भी अपना लिया जाता है। यह अलग बात है कि अपनाने के बाद कोई उनमें अपेक्षित सुधार ला सके या नहीं, पर सुधार की एक अपनत्व-भरी कोशिश अवश्य उसमें जुड़ जाती है। इसलिए एकाएक सुधार संभव न होने पर भी सुधार की संभावना बढ़ जाती है और धीरे-धीरे सफलता की राह भी खुलती चलती है।

"लेकिन यह बाद की बात है। कितनी भी सदिच्छा-सद्भावना हो, शुरू में ही उसके साथ 'अपेक्षा' और 'संभावना' जैसे शब्द जोड़कर चलना ठीक नहीं। बाद में अपेक्षा पूरी न होने या संभावना के घटित न होने पर इससे निराशा हाथ लग सकती है। और भीतर के 'सर्वोत्तम' के समर्पण के साथ कमियों या उनसे उत्पन्न निराशा का कोई मेल नहीं बैठाया जा सकता। अपनत्व के अपने अलग सुखद आयाम होते हैं। इसलिए फिर कहती हूँ, 'अपनत्व' और 'सर्वोत्तम के समर्पण' का कोई विकल्प नहीं हो सकता।

"यह भीतर का 'सर्वोत्तम' क्या है? अपने किसी 'सर्वप्रिय' के प्रति मन की सभी कोमल भावनाओं, प्रेमल अनुभूतियों और सदिच्छाओं का योग ही तो! सच्चा और सम्पूर्ण समर्पण इस समन्वित भावना से ही हो सकता है—फिर वह प्रिय प्रेमी के प्रति हो, पति के प्रति हो या भगवान के प्रति। मनुष्य से उठकर प्रकृति के हर रंग, भगवान की सृष्टि के हर जीव-जन्तु, पशु-पक्षी से लेकर स्वयं भगवान तक पहुँचने वाला यह 'प्रेम' बहुत विराट् है, बहुत विशाल। इसे एक सीमित परिधि या परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता। पर इस विस्तार तक ऊँचे उठने के लिए लम्बी साधना चाहिए। इसलिए यहाँ अपने सर्वप्रिय मनुष्य की बात ही लें।

"तो यह 'सर्वोत्तम' न तो हर किसी को लुटाया जा सकता है, न इसके अस्तित्व में आने से पहले के कच्चे माल को अपरिपक्व रूप में अपने प्रिय को दिया जा सकता है। दिया भी जाए तो उससे आत्म-सन्तोष नहीं मिलेगा। उसका सु-फल हाथ नहीं लगेगा। अतः उपयुक्त समय आने तक

रूप से तैयार रहना चाहिए। आखिर गलती की है तो उसके परिणाम से पलायन क्यों? लेकिन वैसी स्थिति बन आए तो उसके निराकरण का उपाय भी यही होना चाहिए कि आगे वैसी गलती या फिसलन न हो और दृढ़ चरित्र व गहरा आत्मविश्वास लेकर लड़की अपने पैरों पर खड़ी हो। जहाँ ऐसा होता है, वहाँ दण्ड की यह अवधि भी प्रायः अल्प व अस्थायी ही होती है और समय स्वयं इस दरार को पाटकर दोनों को वापस मिला देता है, जबकि आक्रोश या बदले की भावना से आगे और गलत कदम उठते जाते हैं और फिर समाधान के लिए कोई राह नहीं बचती।

"पहले से ही चरित्र की दृढ़ता पास हो तो ऐसी नौबत ही क्यों आएगी भला?

"मुझे खुशी है कि तुम घूमकर उसी बात पर आ गयी हो, जिसके लिए अपेक्षित मानसिक तैयारी की बात पहले कही गयी है। मानसिक परिपक्वता और सच्चरित्रता में प्रायः असामंजस्य नहीं होता। परिपक्व समझ का व्यक्ति अक्सर सोच-समझकर ही कदम उठाता है। इसलिए संकल्प की दृढ़ता व सच्चरित्रता की बात उसके साथ अनायास ही आ जुड़ती है। फिर भी यह जरूरी नहीं कि अपरिपक्व समझ में उठा कोई गलत कदम आगे समझ आने पर सही दिशा में ले जाया नहीं जा सकता। आखिर इन्सान भूलों से ही तो सीखता है! मन की गति पर हमेशा न तो कड़े बन्धन लगाए जा सकते हैं, न वर्तमान माहौल में ऐसी कोई सीमा-रेखाएँ ही खींची जा सकती हैं। पर एक बात तुम लोगों को अच्छी तरह से समझ लेनी है कि इन सब स्थितियों को स्वीकारते हुए भी, यह जरूरी नहीं कि भूल करके ही सीखा जाए। अगर भीतरी संस्कारिता से या किसी बाहरी निर्देशन से सही दिशा मिल रही हो तो नासमझ उम्र में भी कदमों को भटकने से बचाया जा सकता है। हो सकता है, इस रास्ते चलने में रोमांच या 'थ्रिल' (यदि उसको चाहना है तो) के अनुभव से वंचित रहना पड़े, लेकिन आत्मसंतोष और आत्मगौरव इससे बड़ी चीज है। अब यह किशोरियों के सोचने की बात है कि उन्हें बड़ी चीज हासिल करनी है, या छोटी?"

अभी तक की इस सारी बातचीत के दौरान सता मन्त्रमुग्ध मौना-सी

संस्कारिता को झटककर अलग कर देंगे ? वेशभूषा, रहन-सहन, शिष्टा-चार में ये कितने ही आधुनिक बनने की कोशिश करें, मन से वे इस रूप में आधुनिक नहीं हो पाये हैं। यों भी आधुनिकता का अर्थ पश्चिमीकरण या अपनी जड़ों से, अपने संस्कारों से विलगाव नहीं। यह बात बहुत गहरे तक समझने की जरूरत है, क्योंकि हमारे यहाँ भी दाम्पत्यिक दरार और पारि-वारिक विघटन की बढ़ती संख्या के पीछे यही मुख्य कारण है।"

"तो क्या किसी लड़की से ऐसी भूल हो जाए तो वह इसे अपने पति से छिपा ले ? उसे बताकर उसका विश्वास प्राप्त न करे ?"

"पहली बात तो यह कि जासपास रोज के दुष्परिणाम देखते हुए इस भूल से बचें। फिर भी मान लो, किसी असावधानी या क्षणिक दुर्बलतावश ऐसा हो जाए तो भी बताना जरूरी नहीं। यह भय या दुश्चिन्ता मन से निकालना जरूरी है कि 'हाय, उसे पता चल जाएगा, तो क्या होगा ?' कई बार तो इस दुश्चिन्ता के मनोरोग से ही बनते सम्बन्ध बिगड़ते देखे गए हैं। 'भय का भूत' ऐसा भयानक भी हो सकता है, इसकी शिकार लड़कियाँ प्राय. इसे समय पर नहीं पहचान पाती और जब पहचान पाती है, तब तक संदेह-अविश्वास की कटार उनकी गर्दन पर चल चुकी होती है। हाँ, यही 'कहीं बात खुल न जाए ?' वाला भय का भूत। यों पता चल जाने का अपने आपमें, ऐसा कोई कारण या आधार नहीं है। तो सन्देह न होने पर भी बेवजह सन्देह को बीच में लाना और पति की उदारता पर बहुत बड़ा भरोसा रखना जान-बूझकर विपत्तियों को निमन्त्रण देना है। इसके बजाए, 'बीती ताहि बिसार के,' आगे पाक-साफ मन के साथ दाम्पत्य जीवन की नई शुरुआत करना ही ठीक होगा ?"

"लेकिन मान लो, पति को पता चल जाता है तो ?"

"तो छिपाना तो ठीक नहीं। अपनी मजबूरी बताकर या गलती मानकर, जो भी सच्चाई हो, पति से क्षमा माँग लेनी चाहिए। सच्चे मन से किया गया पश्चाताप और आगे वफादारी का संकल्प हो तो अक्सर क्षमा भी मिल जाएगी, मन की शान्ति भी। क्षमा न मिले तो भी सच्चाई का मूल्य अपने आपमें कम नहीं होता। पिछली गलती के लिए और आगे इस मूल्य की प्राप्ति के लिए जो दण्ड भोगना पड़े, उसके लिए भी मानसिक

रूप में तैयार रहना चाहिए । आखिर गलती की है तो उसके परिणाम से पलायन क्यों ? लेकिन वैसी स्थिति बन आए तो उसके निराकरण का उपाय भी यही होना चाहिए कि आगे वैसी गलती या फिसलन न हो और दृढ़ चरित्र व गहरा आत्मविश्वास लेकर लड़की अपने पैरों पर खड़ी हो। जहाँ ऐसा होता है, वहाँ दण्ड की यह अवधि भी प्रायः अल्प व अस्थायी ही होती है और समय स्वयं इस दरार को पाटकर दोनों को वापस मिला देता है, जबकि आक्रोश या बदले की भावना से आगे और गलत कदम उठते जाते हैं और फिर समाधान के लिए कोई राह नहीं बचती।

"पहले से ही चरित्र की दृढ़ता पास हो तो ऐसी नौबत ही क्यों आएगी भला ?

"मुझे खुशी है कि तुम घूमकर उसी बात पर आ गयी हो, जिसके लिए अपेक्षित मानसिक तैयारी की बात पहले कही गयी है। मानसिक परिपक्वता और सच्चरित्रता में प्रायः असामंजस्य नहीं होता। परिपक्व समझ का व्यक्ति अवसर सोच-समझकर ही कदम उठाता है। इसलिए संकल्प की दृढ़ता व सच्चरित्रता की बात उसके साथ अनायास ही आ जुड़ती है। फिर भी यह जरूरी नहीं कि अपरिपक्व समझ में उठा कोई गलत कदम आगे समझ आने पर सही दिशा में ले आया नहीं जा सकता। आखिर इन्सान भूलों से ही तो सीखता है। मन की गति पर हमेशा न तो कड़े बन्धन लगाए जा सकते हैं, न वर्तमान माहौल में ऐसी कोई सीमा-रेखाएँ ही खींची जा सकती हैं। पर एक बात तुम लोगों को अच्छी तरह से समझ लेनी है कि इन सब स्थितियों को स्वीकारते हुए भी, यह जरूरी नहीं कि भूल करके ही सीखा जाए। अगर भीतरी सच्चरित्रता से या किसी बाहरी निर्देशन से सही दिशा मिल रही हो तो नासमझ उम्र में भी कदमों को भटकने से बचाया जा सकता है। हो सकता है, इस रास्ते चलने में रोमांच या 'थ्रिल' (यदि उसको चाहना है।) के अनुभव से वंचित रहना पड़े, लेकिन आत्मसंतोष और आत्मगौरव इससे बड़ी चीज है। अब यह किशोरियों के सोचने की बात है कि उन्हें बड़ी चीज हासिल करनी है, या छोटी ?"

अभी तक की इस सारी बातचीत के दौरान सत्ता मन्त्रमुग्ध श्रोता-सी

बारे में पूरी आश्वस्ति हो, तब भी लड़कियों को इस ओर सावधान रहना होगा। लेकिन यहाँ शुरू में हमने 'सर्वोत्तम के समर्पण' की बात उठायी थी, तो इस बात के साथ सतर्कता या सावधानी का भी कोई तालमेल नहीं बैठता। किन्हीं आश्वस्त स्थितियों में सतर्कता जरूरी न समझी जाए, तो भी अपने सर्वाधिक प्रिय या आत्मीय व्यक्ति को अपने भीतर के, खण्डित नहीं, सम्पूर्ण का समर्पण करना है, यह बात सबसे अधिक वजनी और अपने आपमें बहुत ऊँची है। किसी तर्क से इसका खण्डन नहीं किया जा सकता।"

ऐसा कहते हुए मम्मी ने आँख उठाकर लता को देखा तो पाया कि उसकी आँखों में एक संकल्प, एक आश्वस्ति की चमक के साथ कुछ तरल-सा भी तिर आया है। उन्होंने लता को इस समय और ज्यादा झिंझोड़ना ठीक नहीं समझा और कुछ जरूरी काम याद आ जाने की बात कहकर उठ खड़ी हुईं, "बस, आज और नहीं।"

पर सीमा अभी आगे वहस के मूड में थी, "मम्मी, आप तो आज 'डेटिंग' पर भी चर्चा करने वाली थी न? वह बात तो अभी बीच में आई ही नहीं, छिपाव-दुराव को आप पहले ले आई। अभी तो आपको यह बताना है कि जिन्हें घर से ऐसे मेलजोल की इजाजत नहीं है, जैसे लता को, वे क्या करें? 'डेटिंग' उनके लिए क्या मायने रखती है? और छिपाव-दुराव, झूठ और भय से वे कैसे छुटकारा पा सकती हैं?"

जाते-जाते मम्मी ठिठकीं, फिर बोलीं, "करेंगे भई, इसपर भी आगे कभी चर्चा करेंगे। अभी तो बात को यहीं रहने दो। आज की खुराक तुम लोगों के लिए पहले ही काफी गरिष्ठ परोस दी गई है। इसे धीरे-धीरे ही पचा पाओगी, तुम। बीच-बीच में सोचने के लिए भी कुछ समय लेना चाहिए। इसलिए जो सुनो, पहले उसे गुनो फिर आगे बढ़ो। इस बीच जो कुछ प्रश्न तुम दोनों के मन में उठें, अगले रविवार को उन्हें भी लेकर आना। एकबारगी मैं तुम्हारे सभी प्रश्नों के समाधान देना चाहूँगी। फिर आगे मम्मी को हर बार हर बात के बीच मत घसीटना। इस तरह भी पर-निर्भरता बढ़ती है और स्वयं सोचकर निर्णय लेने की क्षमता बाधित होती है। मैं समझती हूँ, अगली मीटिंग के बाद तुम्हें हर प्रश्न के समाधान के

लिए मेरे पास नहीं आना पड़ेगा। मैं भी तुम्हारे स्वतंत्र विकास के बीच में नहीं आना चाहूँगी। हाँ, जब कभी कोई कठिनाई सामने उपस्थित हो, तुम निःसंकोच मेरे पास आकर मुझसे सलाह ले सकती हो।"

मीना ने कुछ रुआँसे, कुछ लाड़-भरे स्वर में शिकायत की, "मेरी समस्या कहाँ थी मम्मी ? मैं तो अपने निर्णय अब स्वयं लेती ही हूँ। यह तो लता की मदद के लिए आपने ही कहा था, 'उसे मुझसे मिलाओ।' फिर आप वे बातें भी बीच में ले आईं, जो अभी उसके सामने नहीं थीं। मेरे सामने भी अभी तक नहीं आई थीं, पर आ सकती थीं। लगता है, यही सोचकर आपने लता के साथ आज मुझे भी अपने पास बैठने दिया, वरना ।"

'वरना क्या ? तुम किसी बात को कभी गंभीरता से लेती भी हो ? अक्सर बात को यूँ ही टालने, उड़ाने की जो तुम्हारी आदत है, उसे क्या मैं जानती नहीं ? लता बीच में न आती वह तुम्हें जोर देकर पास न बैठाती तो अब भी तुम यहाँ बैठने वाली थीं ? इतना अतिरिक्त आत्मविश्वास भी ठीक नहीं होता, मीना।"

"सचमुच इतना 'ओवर कान्फीडेंस' होता मुझमें तो इस तरह लता और आपके बीच की बातचीत को मैं आज यूँ अपनी तरफ नहीं मोड़ लेती। सच मम्मी, मुझे भी सब तरह समझने-बूझने की जरूरत है, इसीलिए तो बात को आगे बढ़ाना चाह रही थी और आप समझती हैं कि मैं सब कुछ जानती-समझती हूँ और अपने बारे में स्थिति से अपने आप निबट सकती हूँ। अब, यदि आपने बात को काफी हद तक बढ़ा ही दिया है तो मैं भी वहाँ तक पहुँचने के सारे ऊँच-नीच समझना चाहती हूँ, गलत हो नहीं।"

"मैंने कब कहा कि मत समझो। समझने-जानने की जरूरत तो सभी युवतियों [illegible] पर भी रहेगी। मैं केवल इतना कहती हूँ कि ज्यादा पूछो, अधिक सुनो और फिर अपनी अक्ल [illegible]। हाँ, तुम्हारी इच्छानुसार अगली मीटिंग में इसी बात को आगे बढ़ाना है। अब तो खुश ?" और मम्मी मीना के गाल सहलाते, लता को [illegible] बाहर चली गईं।

मित्रता अधिक बहुमूल्य

लता, लता की माँ और नरेश

छुट्टी वाला दिन था ही। लता घर लौट रही थी कि घर के समीप सामने से आता नरेश लता के रूबरू हो आया, "कहिए, लता जी, कहाँ से आ रही हैं?"

"अ-हं," लता जरा-सी अचकचाई। पर आज उसने कतराकर निकल जाने की कोशिश नहीं की। थोड़ी हैरान जरूर हुई कि यह मुन्ना-सा, बब्बू-सा लड़का इस तरह गली में खड़े होकर बात करने की हिम्मत कैसे जुटा पाया? फिर खुश हुई कि चलो बात शुरू तो हुई! और उत्तर देने के लिए उसने आनन-फानन में स्वयं को सहेज लिया, "जरा मीना के घर तक गई थी।"

"क्या आपकी माताजी आपको मीना के घर जाने देती हैं? आपका उससे मेलजोल तो उन्हें पसन्द नहीं है न?"

लता फिर हैरान, "तुम्हें कैसे मालूम?"

"मैं क्या जानता नहीं?"

"और क्या जानते हो?"

"यही कि उन्हें मेरा भी आपके घर आना पसन्द नहीं न मुझसे बात करना ही।"

"तभी इस तरह राह रोककर बात कर रहे हो?"

"राह रोककर नहीं, राह चलते खड़े होकर।"

"यही सही, पर तुम तो· · ·?"

"हाँ, अभी तक बात करने से झिझकता रहा—यही न?"

"झिझकते रहे कि डरते रहे?"

"यही समझ लें।"

"पर किससे डरते रहे? मेरे घर वालों से? अपने घर वालों से? या अपने आपसे?"

"अब आप जो भी समझ लें। मैं तो जी ।"

"यह आप-आप और जी-जी क्या लगा रखी है?"

"तो क्या कहूँ?"

" 'तुम' नहीं कह सकते? क्या मित्रता ऐसे होती है, इतनी औपचारिकता के बीच?"

"मित्रता?"

"हाँ मित्रता।"

"वह कब हुई?"

"नहीं हुई तो हो सकती है। इसके लिए कोई मुहूर्त निकलवाना होगा क्या? समझ लो आज से ही शुरू हो गई।"

"अ-ह " अब अचकचाने की बारी नरेश की थी, "लेकिन ?" उसे पसीना छूटने लगा।

"लेकिन क्या? यूँ घबराने की जरूरत नहीं। हम कोई चोरी नहीं करने जा रहे। अच्छा, 'बाई'। हम फिर मिलेंगे।" और हाथ हिलाती लता यह जा, वह जा। नरेश ठगा-सा उसे देखता रह गया।

लता स्वयं पर भी कम हैरान न थी। पर मीना और उसकी मम्मी का जादू जो उसके सर चढ़कर बोलने लगा था!

उत्साह से उड़ते कदमों और गुनगुनाते होंठों के साथ उसने घर में यूँ प्रवेश किया जैसे लम्बी घुटन के बाद ताजी हवा का एक झोंका उसके साथ-साथ घर में घुस आया हो।

सामने ही माँ बैठी सब्जी काट रही थी। उसे देखकर मन ही मन मुस्कराईं, फिर बोल उठीं "क्या बात है? आज बड़ी खुश नजर आ रही है मेरी बेटी?"

"ओह-मॉम" लता ने माँ के गलबहियाँ डाल दी, "तुम जानती तो हो कि मैं यह अब पहले वाली 'बोर', ओल्ड, फुस्सैल लता नहीं हूँ। मन-ही-मन

[illegible]

"जानती हूँ। इसलिए खुश हूँ कि बो का कहे हैं—'देर आयद दुरुस्त आयद'—चलो तुम ठीक तो हुईं। मच, मुझे तो तमारी घणी चिन्ता रहवैं थी कि..."

"...कि यह नकचढ़ी लड़की ससुराल में कैसे निभाएगी—यही न?"

"तुमने ठीक समझा। अब अगर तुमने भाई-बहनों को खिझाना छोड़ दिया है। उनको सार-सँभाल और घर के कामकाज में दिन लगाने लगी हो और माँ की हर बात की काट नहीं करती हो तो मुझे काहे की चिन्ता!"

"पर माँ, अब तुम्हें भी मेरा साथ देना होगा।"

"कइसे?"

"मुझपर लगाए बंधन ढीले करके।"

"अरी कौन से अइसे बंधन █ तुझपर निगोड़ी? सोना और उसकी फैसनेबल माँ से मिलने के लिए अब कब मना करती हूँ तुम्हें? जब से मुझे पता चला और यकीन हो गया कि तुम्हें सही मार्ग पर लाने में उनने ही मेरी मदद करी है, तो मैं का मूरख हूँ जो अब भी तुम्हें उधर जाने से रोकूँगी?"

"पर बात इतनी ही तो नहीं है!"

"तो क्या उस आवारा छोरे नरेश को भी घर आण-जाण दूँ? ना, जे नहीं होने का।"

"देखो माँ, पहली बात तो यह कि बिना जाने-समझे किसी को आवारा कह देना उचित नहीं। दूसरी बात यह कि वह आवारा होता तो क्या तुम्हारी बेटी उससे मेलजोल रखना पसन्द करेगी? क्या तुम्हें अपनी बेटी पर यकीन नहीं? तीसरी बात यह कि किसी से मिलने-जुलने का मतलब क्या प्रेम करना ही होता है! अच्छे पड़ोसी के नाते क्या हम नहीं मिल सकते? रही दोस्ती की बात, तो वह भी मैं सोच-समझकर, देख-परखकर ही तो आगे बढ़ाऊँगी। क्या मैं इतनी कम-अक्ल हूँ कि इतना भी नहीं जानती या अपना आगा-पीछा नहीं सोच सकती!"

"हाँ भई, अब तो तुम बौत समझदार हो गई हो न। पर यह मत भूलो कि जे बड़की रपटीली डगर है, जिस पर चलते अपने को चौकस मार

मां' कहने वाले भी फिसल जाते हैं। बड़े-बड़े समझदार भी धोखा खा जा है।"

"तुम ठीक कहती हो माँ। मैं नासमझ न होऊँ, अनुभवहीन ना हो। फिर भी मुझपर भरोसा रखो माँ। अव्वल तो ऐसा कुछ होगा ह नहीं। होगा, या कभी इस बारे में मेरे सामने कोई कठिनाई आई तो तुम्हें अँधेरे में नहीं रखूँगी। तुम्हें सब कुछ बताकर तुम्हारी सलाह से ही चलूँगी। क्या मुझे माँ-बाबू के अनुभवी परामर्श और संरक्षण की जरूर नहीं ?"

लता की माँ के चेहरे पर आत्मतोष की एक झलक उभरी। पर उसे दबाकर उन्होंने फिर एक जिम्मेदार गम्भीरता ओढ़ ली "ठीक है। पर मैं तुम्हारी बात से सन्तुष्ट हो भी जाऊँ कि तुम सही मारग चुनोगी और ठीक-ठीक चलोगी, का अपने बाबूजी को भी अइसे ही यकीन दिला सकोगी ? तुम्हें छूट लेते देखकर का वह मुझपर दोस नहीं धरेंगे ? फिर जरा भी कुछ ऊँच-नीच भयो या वइसे ही किसी को कोई शक परि गयो तो का तुम कोई की जुबान पकड़ सोगी ? लोग बात का बतंगड़ बनाते हैं और खामखा बदनामी हो जावै है। जानत हो, एक बार काहू की लड़की पर उँगली उठ जाए तो का होत है ?"

"जानती हूँ माँ, उसका सारा भविष्य धूमिल हो सकता है। पर ऐसी नौबत ही क्यों आएगी भला ! हाँ, बाबूजी की बात तुम मुझपर छोड़ दो। वह तो मुझपर तुमसे ज्यादा विश्वास करते हैं माँ, यह तो तुम ही ।"

"हाँ, मैं ही अधिक टोकाटाकी करती हूँ और मैं ही उनसे तुम्हारी सिकायत करती रही हूँ—जेही न ? पर जानत हो, क्यों ? अब मरद लोग तो जादा समय घर से बाहर रहवें हैं। जरा सी भी कछु बात होई गई तो जवाबदेही भी माँ पर, शामत भी वही की। तब माँ को ही आगे बढ़ि के अपनी जवान होती छोरी की जिम्मेदारी लेनी पड़े कि नहीं ? लरकिन को बुरो लगत है। पर जे बंधन का उनके ही भले के नाहीं !"

"जरूर उनके ही भले के लिए हैं, अगर एक सीमा तक हो।"

"पर तुम का जानो जे···का कहीं··· सीमा-वीमा ? पता है, उनसे-

उठते पेड़ के चारों तरफ लोहे की जाली वाली गोल बाड़ क्यों लगाते हैं ? और पेड़ के ऊँचे होने पर, उसके सिर उठाकर मजबूती से खड़े हो जाने पर बाड़ क्यों हटा लेते हैं ?"

"समझ गई माँ, तुम्हारा मतलब खूब समझ गई हूँ। अब तो यह भी समझ रही हूँ कि मैंने आज तक तुम्हें समझने में गलती की। तुम्हारी शिक्षा अपने घर के परिवेश का ध्यान किए बिना हर बात में लीना की मम्मी से तुम्हारी तुलना करके तुम्हें छोटा बनाती रही और स्वयं भी मन ही मन घुटती-कलपती रही। अब ठीक से जान पाई हूँ तो लगता है, तुम भी किसी से कम नहीं।" फिर माँ के गले में बाँहें डालकर झूलते हुए, "मेरी सीधी-सादी अच्छी माँ! हाय, कितनी भोली दिखकर भी तुम कितनी छुपी रुस्तम निकलीं माँ, सचमुच छुपी रुस्तम!"

"बस-बस, अब ज्यादा मक्खन न लगाओ। उठो ऊपर जाकर बिखरा काम-काज निबटा लो। फिर मुन्ना, गुड्डी को भी पढ़ाना है। बहुत होई गई दिन-भर छुट्टी की मटरगश्ती।"

"मैं क्या मटरगश्ती करने गई थी!"

"न सही। पर खाली बातों से पेट नहीं भरता! कुछ करके भी दिखाना चाहिए।"

"जरूर दिखाऊँगी। तुम देखना माँ, अब मैं क्या-क्या करके दिखाती हूँ। बस तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए।"

"अहमा का 'कारूँ का खजाना' लग गया तुम्हारे हाथ, जो पहले नहीं था!"

" 'कारूँ का खजाना' क्या होता है, यह तो मैं नहीं जानती। पर यह जान गई हूँ कि मिला उससे अधिक मूल्यवान चीज है—बहुमूल्य नहीं अमूल्य।" धीरे से यह वाक्य उछालती लता उठकर चली गई और चुन्नी कमर में खोंस यूँ काम निबटाने लगी, जैसे उसके पैरों में पहिए लग गए हों, बाँहों में मशीनी पुर्जे फिट हो गए हों और मस्तिष्क में उन्हें सचालित करने के बटन।

किसकी पहल ?

लता और नरेश

"क्या बेमतलब आ रहे हो ?"

हाथ में बस्ता घुमाते, मस्ती में झूमते, हवा में उड़ने से तेज आते नरेश के कानों में जैसे कोई घड़ी बज उठी हो, उसी की टन यकायक पहिए रुक गए हों, वैसे ही उसके कदमों को अचान लग गए। उसने आँख उठाकर देखा तो देखता रह गया। एक क्षण अपने कानों पर विश्वास न हो रहा था, अब आँखों पर नहीं था।

सामने लता खड़ी थी। मुड़ी-मुड़ी छुईमुई-सी लता नहीं। सीधे उसकी ओर एकटक ताकती लता। नरेश से उसका यह बार भेजा गया, 'क्या यह वही लता है ?' एक क्षण नहीं, दो क्षण लगे उसे सँभल अभी थोड़ी देर पहले की अपनी हवाई उड़ान भूल, उसके पग थम गए थे। बड़ी कठिनाई से कंठ खुला, "आप ?"

"फिर आप ?"

"ओह 'सारी', लता जी।"

"नो जी।"

"अच्छा-अच्छा। 'नोटेड'। मैं तो भूल ही गया था, आपकी तुम्हारी यह हिदायत। ओह-ओऽऽ" एक हल्का-सा ठहाका लगाने सहज हो आया वह, "कहो, क्या हालचाल हैं ? आजकल इस नाचं नजरें इनायत कैसे होने लगी ?"

"न तुम नाचीज हो, न नजरें इनायत होने जैसी कोई बात है।"

"फिर ?"

"फिर क्या, कुछ नहीं। हम पड़ोसी हैं, सहपाठी हैं, तो मित्र भी

सकते हैं—नहीं ?"

"जरूर हो सकते हैं। लेकिन बाधा तो तुम्हारी ओर से ही थी न, क्या डर निकल गया ?"

"डर क्या इकतरफा था ?"

"शायद नहीं। पर लड़कों का डरना तो स्वाभाविक है—।"

"स्वाभाविक है—क्यों ?"

"क्या पता, कोई अपमानित कर दे तो ? सामने से चप्पल-सैंडिल भी आ सकती है—लड़कियों का क्या भरोसा ?"

"एँ-हूँ" लता ने मुँह बिचकाया, "जैसे लड़के तो सब भरोसेलायक ही होते हैं।"

"सब न हों, कुछ तो हो ही सकते हैं।" कहकर उसने शरारत से लता की आँखों में झाँका।

लता सँभली, "देखो नरेश, बातचीत को यूँ हल्का मोड़ मत दो। न यह जगह ही है ऐसी बहस की।"

"तो चलो, उधर टेकरी पर चढ़कर बैठते हैं। जरा इत्मीनान से बातें करेंगे।"

हूँ मैं ···कहीं यह मेरे मन में बैठा पहले वाला चोर ही तो नहीं सिर उठा रहा ?···महज मजाक भी तो हो सकता है यह ! ···हाँ, इसे हल्के मूड में, मजाक रूप में ही लेना चाहिए, वर्ना मुश्किल हो जाएगी।' 'फिर भी एक सतर्कता जरूरी है।' और इसके साथ ही उसके मन में एक संकल्प भी उभर आया, 'इसके मन में कुछ हो न हो, इसका मन साफ करना होगा। इसे राह पर लाना होगा। इसे लीना की मित्र-मंडली में शामिल करना होगा। दोस्ती लायक है या नहीं, कुछ दिनों में अपने आप पता चल जाएगा।'

"कहाँ खो गई देवी जी, अब देर नहीं हो रही ?"

लता जैसे सोते से जागी, "अं-ह, कुछ नहीं। कहीं नहीं खो गई। खोने जैसा कुछ है ही नहीं मेरे पास। अच्छा, फिर मिलेंगे। अभी तो चलती हूँ, सचमुच मुझे देर हो गई है।"

"फिर कब मिलोगी—कहाँ ?"

"अभी कुछ नहीं कह सकती। हाँ, याद आया, लीना तुमसे मिलना चाह रही थी। कभी मिलाऊँगी उससे। चाहोगे तो उसकी पूरी मित्र-मण्डली से भी। क्या तुम उनके साथ मिलना, हमारी मित्र-मण्डली में शामिल होना चाहोगे ?"

"तुम्हारी मित्र-मण्डली ? तुम्हारी वह कब से हुई ? तुम तो वहाँ गुमसुम बैठी रहती थीं। फिर जाना ही छोड़ दिया।"

"यह सब तुम्हें कैसे मालूम, नरेश ?" लता ने अपनी विस्फारित निगाह उस पर डाली। वह भीतर तक हिल गई थी। हैरान ही नहीं, परेशान भी हो आई थी, 'तो मैं बेकार ही तन रही हूँ, इसके सामने। यह तो मेरी सारी पूर्व कमजोरी जानता है।' पर वह पहले की तरह 'नर्वस' होती, इसके पूर्व ही नरेश ने उसे चौंकाने के लिए दूसरा पटाखा छोड़ दिया, "अब तो वह हमारी मित्र-मण्डली है जनाब। अब मैं तुम्हें फिर से वहाँ आने के लिए आमन्त्रित करता हूँ।"

लता के मन का आकाश छँट गया। उसके सामने अब सारी बात साफ थी। वह सँभल ही नहीं गई, आगे बढ़, उसने सारी स्थिति अपने हाथ में ही ले ली, "समझी, तो यह तुम्हारी जासूसी नहीं, लीना की कारस्तानी

थी। मुझे पहले ही मालूम था, वह ऐसा करेगी। पर यह अनुमान न था कि इतनी जल्दी।' तभी मैं कहूँ, यह नरेश का बच्चा उस दिन ठिठक कर बात कैसे करने लगा ?"

"तभी मैं कहूँ यह लता की बन्द कली खुलने-खिलने कैसे लगी ?"

"अच्छा जी, 'हमारी जूती, हमारे ही सिर' ?"

"अच्छा जी, 'हमारी बिल्ली और हमीं से म्याऊँ' ?"

नरेश की यह नकल उसे बहुत प्यारी लगी। फिर भी गुस्से का इजहार जरूरी था, "उहूँ" और सामने से छोटे भाई को आता देख, पैर पटकती वह चल पड़ी। पीछे से एक मुस्कराहट छोड़ नरेश ने भी अपनी राह पकड़ी।

धड़क उठे। तभी सामने से आती लता-नरेश की जोड़ी को देख, उन्हें उछलने का मौका भी मिल गया और कुछ छेड़खानी करने का भी, "लो, ये छुपे रुस्तम भी आ पहुँचे।"

"छुपे रुस्तम ? क्यों ? हमने क्या किया छुपकर ? जो हैं, जैसे हैं, लीजिए, आपके सामने हाजिर हैं।" दोनों बाँहें फैलाकर सिर झुकाते हुए 'आदाब अर्ज' की मुद्रा में वह खड़ा था।

मीना आँख भर उसे देखती रह गई। एकबारगी उसे अपनी आँखों-कानों पर विश्वास नहीं हुआ। फिर वह अपने दिए प्रशिक्षण की सफलता पर सन्तोष से भर आई। नरेश यों तो आकर उनमें इस तरह घुल-मिल गया, जैसे बरसों से उनके साथ हो, पर लता के बारे में उसकी झिझक अभी बरकरार थी। इसलिए लता को लेकर उसने कोई बात नहीं की न सबके बीच लता से कुछ बोला ही। बस कभी-कभी उसकी ओर कनखियों से देख-भर लेता था। ऐसे समय लता कुछ सकुचित हो आती, कुछ विचलित हो उठती, फिर शीघ्र ही सहज हो स्वयं को सँभाल लेती।

पर इस ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। आपसी चर्चाएँ जोरों पर थीं—देश की, समाज की, संस्कृति की, कला की, युवा पीढ़ी की, साहित्य की, पीढ़ियों के अंतराल की, सम्बन्धों और सुविधाओं की, अवसरों और उपलब्धियों की। गम्भीर और विचारोत्तेजक। इसलिए बीच-बीच में आक्रोश भी उभरता, तर्कों की धार भी पैनी हो उठती। पर आज बहस किसी खास मुद्दे पर केन्द्रित न थी, इसलिए वातावरण में आता उबाल जल्द ही बैठ जाता। क्षण-क्षण उठने-गिरते समुद्री ज्वार-भाटे को जिस तरह किनारे खड़े लोग एक आनंदित तटस्थता से निहारते रहते हैं, कुछ-कुछ वैसे ही मूड में। तो बहस का माहौल बोझिल न हो पाया, पिकनिक-भावना से ही हल्का-फुल्का बना रहा।

फिर खाने-पीने का दौर चला तो सबने गम्भीरता का ओढ़ा हुआ वह झीना लबादा भी उतार फेंका और कहकहों की फुलझड़ियाँ छोड़ने लगे। कहीं किसी के टिफिन में से कोई चीज उड़ाई जा रही है। कहीं, किसी के हाथ से स्वादिष्ट पकवान छीना जा रहा है। कहीं अपने प्रिय मित्र के मुँह में बड़ा-सा कौर ठूँसा जा रहा है तो कहीं पानी छलकाकर

विषय और भी हैं—ढेरों

संयुक्त मित्र-मण्डली

बरसात बीत गई। सर्दी भी आकर निकल गई। अब गुलाबी-सा मौसम है वसन्त का। धरा और प्रकृति में नई छटा, नए अंकुर। इसी तरह युवा होते मनों में भी नई ऊर्जा भर आई है, नई उमंग, नया उभार लिए कल्पनाशील मन नई उड़ानें भरना चाहता है। पर सब परीक्षा-चिन्ता के धागे में बँधे हैं। जब तक यह धागा सुलेगा वसंत बीत जाएगा।

तो क्या किया जाए?

परीक्षाएँ सिर पर हैं। कुछ दिन सारा घूमना-फिरना, दोस्तों की बैठकबाजी, गप्पबाजी, बहसें और चर्चाएँ बन्द रखनी होंगी। इसलिए तय हुआ कि इस सत्र में आज आखिरी बार मिल लें। अपनी-अपनी परीक्षा की तैयारी में जुटने से पहले बाहर जाकर एक 'पिकनिक' मना लें। इससे

[illegible]

लड़के-लड़कियों की था, यह मित्र-मण्डली। पर अपनी अलग-अलग हस्ती भूल, सभी एक मस्ती के आलम में डूबे-सराबोर। दीपक-लीना ने आते ही एक घोषणा कर दी, "आज के दिन पढ़ाई की, नोट्स की, परीक्षा की कोई बात नहीं होगी।"

'हुर्रा' सामूहिक खुशी की एक लहर हवा में उछली। फिर उभरी

[illegible] "फिर क्या होगा?" और इसके साथ ही कुछ जवान दिल

धड़क उठे। तभी सामने से आती लता-नरेश की जोड़ी को देख, उन्हें उछलने का मौका भी मिल गया और कुछ छेड़खानी करने का भी, "लो, ये छुपे रुस्तम भी आ पहुँचे!"

"छुपे रुस्तम? क्यों? हमने क्या किया छुपकर? जो हैं, जैसे हैं, लीजिए, आपके सामने हाजिर हैं।" दोनों बाँहें फैलाकर सिर झुकाते हुए 'आदाब अर्ज' की मुद्रा में यह लता थी।

लीना आँख भर उसे देखती रह गई। एकबारगी उसे अपनी आँखों-कानों पर विश्वास नहीं हुआ। फिर वह अपने दिए प्रशिक्षण की सफलता पर सन्तोष से भर आई। नरेश यों तो आकर उनमें इस तरह घुल-मिल गया, जैसे बरसों से उनके साथ हो, पर लता के बारे में उसकी झिझक अभी बरकरार थी। इसलिए लता को लेकर उसने कोई बात नहीं की न सबके बीच लता से कुछ बोला ही। बस कभी-कभी उसकी ओर कनखियों से देख-भर लेता था। ऐसे समय लता कुछ संकुचित हो जाती, कुछ पुलकित हो उठती, फिर शीघ्र ही सहज हो स्वयं को सँभाल लेती।

पर इस ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। आपसी चर्चाएँ जोरों पर थीं—देश की, समाज की, संस्कृति की, कला की, युवा पीढ़ी की, साहित्य की, पीढ़ियों के अंतराल की, सम्बन्धों और सुविधाओं की, अवसरों और उपलब्धियों की। गम्भीर और विचारोत्तेजक। इसलिए बीच-बीच में आक्रोश भी उभरता, तर्कों की धार भी पैनी हो उठती। पर आज बहस किसी खास मुद्दे पर केन्द्रित न थी, इसलिए वातावरण में आता उबाल जल्द ही बैठ जाता। क्षण-क्षण उठने-गिरते समुद्री ज्वार-भाटे को जिस तरह किनारे खड़े लोग एक आनंदित तटस्थता से निहारते रहते हैं, कुछ-कुछ वैसे ही मूड में। तो बहसों का माहौल बोझिल न हो पाया, पिकनिक-भावना से ही हल्का-फुल्का बना रहा।

फिर खाने-पीने का दौर चला तो सबने गम्भीरता का ओढ़ा हुआ वह झीना लबादा भी उतार फेंका और कहकहों की फुलझड़ियाँ छोड़ने लगे। कहीं किसीके टिफिन में से कोई चीज उड़ाई जा रही है। कहीं किसी के हाथ से स्वादिष्ट पकवान छीना जा रहा है। कहीं अपने प्रिय मित्र के मुँह में बड़ा-सा कौर ठूँसा जा रहा है तो कहीं पानी छपकाकर

कोई पुरुष या नारी दिखाई जा रही है। बस इतना ही, इसके आगे कुछ नहीं। इस बौद्धिक मंडली में एक भी व्यक्ति ऐसा न था, जो बड़प्पन के दम्भ को लिफ्टेशन पर उतरे। एक आत्मीयता, एक गरिमा इसको बनाए रखती है, यह शायद उनके बीच एक अलग समझौता था। ये इस मित्र-मण्डली की सामूहिक अस्मिता थी।

नरेश को चूँकि अभी इस मण्डली में शामिल हुए कुल-जमा आठ रोज ही हुए थे, उसके लिए यह सब बहुत विस्मयकारी अनुभव था। लता के लिए यह अनुभव नया न होकर भी इस मायने में सुखद और आश्चर्यकारी था कि अब वह इसमें 'अन-फिट' न थी और चाहती थी कि नरेश भी यह सब जाने-समझे तो उसका रास्ता आसान हो जाए।

खाना-पीना समाप्त हुआ। थोड़ी देर इधर-उधर लेटने-पसरने, सुस्ताने, फिर बैठकर गप्पने के बाद सब लोग उठ खड़े हुए। टहले, घूमे, बाहर किसी पहाड़ों के बीच प्रकृति के साथ समरस हुए। वहीं खेलों, चुटकुलों का दौर चला। झूमे, नाचे। फिर शाम होते-न-होते ये सारे पंछी अपने-अपने घोंसलों की ओर लौट चले—अपने पंखों में नई स्फूर्ति, नया फैलाव लिए, अपने कैरियर को नई ताकत देने, अपने भविष्य को अधिक विस्तारित करने।

नरेश की आँखों में यह विस्तार अभी समा नहीं पाया था। या शायद उसका अंतर अभी इसे पचा नहीं पाया था। उसने लता से विदा लेते वक्त उसका हाथ दबाया तो लता को उसकी आँखों में जग उठी कामना की लपट साफ दिखाई दी। एक विचित्र ढंग से नजर गड़ाते हुए वह फुस-फुसाया था, "फिर कब मिलोगी ?"

लता ठुनकी, "अभी सबका फैसला सुना तो है जनाब ने कि 'परीक्षाओं के बाद', फिर भी ?"

"हाँ, फिर भी। परीक्षाओं में तो अभी बहुत दिन हैं !"

"तो ?"

"तो क्या हम बीच में किसी 'डेट' को नहीं मिल सकते ? किसी भी एक दिन, कहीं बाहर-एकांत में ?"

लता का माथा ठनका। पर भीतर उठते गुस्से के उबाल को उसने

दबा लिया। चौकन्नी हो आई कि आसपास किसीने सुन तो नहीं लिया? फिर सावधानी से एक शब्द 'देखूंगी' उछालकर वह उसे छोड़, आगे निकल गई। पहले सबके साथ चलते हुए, फिर अकेली ही अपने घर की ओर बढ़ चली। 'शुक्र है, किसी का ध्यान इस ओर नहीं गया'—घर के नजदीक आकर उसने राहत की सांस ली। ठहरकर सोचा, 'मीना ने तो जरूर लक्ष्य किया होगा!' फिर स्वयं ही सिर को झटका दे, समाधान निकाल लिया, 'कोई बात नहीं। मीना को तो मैं यूं भी बता ही देनेवाली हूं कि नरेश की यह हरकत मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आई।' फिर उसे याद आया, हां, इस रविवार को तो मम्मी भी हमसे 'डेटिंग' पर ही बात करने वाली हैं न, वहीं यह समस्या रखना ठीक होगा। पर आगे होकर नहीं, पहले उन्हें सुनूंगी, फिर जो पूछना होगा, पूछ लूंगी। हो सकता है, नरेश गलत न हो, मैंने ही उसकी नीयत को गलत समझा हो?'' नहीं-नहीं, गलत नहीं समझा। यह मेरी पूर्व भावुकता या भीतरी दुर्बलता ही उभर कर शायद उसका पक्ष ले रही है। जो हो, मुझे इस बात को लेकर अब और उलझना नहीं है। परसों ही तो मम्मी इस उलझन को सुलझाने वाली हैं, तो बेकार में अभी से क्यों माथा खराब करूं?' और उसने सिर को एक बार फिर झटककर जैसे यह विचार मन से निकाल देना चाहा कि सहज रूप में घर में प्रवेश कर सके।

के अंधेरों मे भटकते युवा इस प्रकाश-स्तंभ से अपना दिशा-पथ आलोकित कर सकें; अपनी बेचैनियों मे राहत पा सकें। इसलिए 'सर्वोत्तम' वाला सूत्र हाथ लग जाने के बाद उसके लिए 'डेटिंग' जैसा प्रश्न बहुत गौण हो आया था। इसे लेकर कोई दुविधा, कोई परेशानी अब उसके सामने नहीं थी। इसलिए इस विषय की चर्चा मे भी अब उसकी पहले वाली दिल-चस्पी नहीं रह गई थी। फिर भी 'कुछ सुनने-समझने मे क्या हर्ज है' वाली क्षीण उत्सुकता शायद बची थी। तो लता के आते ही उसे लेकर वह मम्मी के पास चली आई।

पर लता अभी ऐसे बुलंद इरादों वाली लड़की नहीं बन पाई थी। उसके भीतर आया नया परिवर्तन उसके प्रशिक्षण का परिणाम था, उसकी परिपक्व मानसिकता की उपज नहीं। ऊपर से काफी दृढ, तटस्थ, हाजिर-जवाब दिखाने की कोशिश करते हुए भी भीतर से अभी वह एक कमजोर लड़की ही थी—डावांडोल, विचलित, दुविधाग्रस्त, जैसे अपने आपसे हरदम लड़ती हुई। तभी तो नरेश के एकांत-भेंट के प्रस्ताव से वह भीतर से थर्रा गई थी और ऊपर से तमतमा आई थी। अभी तक अपने भीतर से उसे कोई जवाब नहीं सूझ रहा था। मम्मी द्वारा दिया गया समाधान भी मानों उसके लिए एक सहारा था। इसलिए उसकी उत्सुकता, इस चर्चा को लेकर तमाम झिझक के बावजूद, उसके चेहरे पर लिखी थी। 'बात कहाँ से, कैसे शुरू करें? पहला प्रश्न क्या हो? अच्छा हो, सीना ही पहले बात उठाए' आदि वाक्य उसके मन मे घुमड ही रहे थे कि मम्मी ने आकर उसे उबार लिया, "कहो लता, कैसी हो? आज तो तुम्हें 'डेटिंग' पर बात करनी है न?"

"सीना को क्यों नहीं?" लता घबरा उठी।

"शायद सीना ने अपने भीतर से इसका उत्तर पा लिया है।"

"आपको कैसे मालूम मम्मी?" सीना चौंकी। बस यही उसकी ओर से 'पहल' हुई। दूसरी पहल उसे करनी भी नहीं थी।

उत्तर मे मम्मी मुस्कुरा-भर दी, "मैं क्या जानती नहीं मुनिया। खैर, छोड़ो इसे। हाँ, तुम बताओ लता, तुम्हारी यही समस्या है न कि नरेश की ओर से ऐसा प्रस्ताव आए तो तुम्हें क्या करना चाहिए?"

की स्थापना से है कि जिन्हें घर से ठीक माहौल, सहयोगी व्यवहार या उचित निर्देशन न मिल सके, वे समय पर इन संस्थाओं से सलाह व मदद ले सकें और 'डेटिंग' जैसे पश्चिमी रिवाजों से है कि बदले समय में ऐसी व्यवस्थाओं को अपनाना जरूरी लगे तो उनका भारतीयकरण कर लिया जाए।"

"किशोर सलाहकार केन्द्रों की बात तो ठीक कि लता जैसों की राह आसान की जाए, मान लो आप इसे न मिलतीं मम्मी, तो इसका क्या होता ? पर 'डेटिंग' का भारतीयकरण ?" मीना ने भी यहाँ आकर अपनी उत्सुकता जाहिर की।

"हाँ, बदले माहौल में किन्हीं बाहरी परम्पराओं को अपनाना अनिवार्य हो जाए तो उनका भारतीयकरण ही करना होगा, वर्ना कटु अनुभवों से सबक ले, उन्हें उखाड़ फेंकने के बाद अपनी सदियों पुरानी रूढ़ परम्पराओं पर लौट आने की स्थितियाँ बन जाएँगी। हमें परम्परा और रूढ़ि में अन्तर करके चलना होगा। भारतीय परम्परा तो एक प्रवाहमान परम्परा है। इसमें आत्मसातीकरण का अद्भुत गुण है। अब, जहाँ इस गुण का ह्रास हुआ, परम्परा रूढ़ि बनकर विकास-पथ की बाधा बन गई। पर, मैं समझती हूँ, यह सब समझाने के लिए मुझे जरा इसके विस्तार में जाना होगा। पहले 'डेटिंग' है क्या, इस पर ही बात करें

"'डेटिंग' का सीधा-सा अर्थ है, किसी स्थान पर मिलने के लिए कोई तिथि निश्चित करना। यह 'डेट' किसी के लिए भी निश्चित हो सकती है। पर किशोर-किशोरियों की मैत्री में इसे एक विशेष अर्थ दे दिया जाता है। फिर एकांत मिलन की बात हो तो इसकी सीमाओं और खतरों को भी जानना जरूरी हो जाता है। विदेशों की 'डेटिंग' पद्धति भारतीय लड़के-लड़कियों को भी आकर्षित करने लगी है तो उन्हें इसकी पृष्ठभूमि व नियमों को भी जानना चाहिए। जिस परिवेश का यह रिवाज है, वहाँ लड़के-लड़कियों को छुपकर मिलने या इसे लेकर कोई गलती करने की भावना मन में पालने की जरूरत नहीं होती। उनकी सांस्कृतिक परम्प- —ें ने यह जायज है। बल्कि कोई किशोरी इस ओर रुचि नहीं लेती तो ि मानकर मन.चिकित्सक के पास ले जाया जाता है। क्या

तुम उस भयावह स्थिति की कल्पना कर सकती हो कि यदि सेक्स सम्बन्धों को खुली छूट दे दी जाए तो समाज में गुण्डों की बन आएगी, सभी शरीफ युवकों को पीछे धकेल दिया जाएगा और किसी भी सुन्दर लड़की का जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा। सामान्य जीवन सुरक्षित रहे, व्यवस्थित रहे, इसीलिए तो कुछ सामाजिक नियम बनाए जाते हैं। कानून तो व्यवस्था या नियम भंग होने की स्थिति में ही काम करता है। मनुष्य को अपने लिए ही इन नियमों के भीतर रहने के लिए आत्म-अनुशासन में बंधना होता है। हाँ, समय के साथ यदि कोई नियम अनावश्यक बंधन या बेकार की रूढ़ि बनकर व्यक्तियों के व्यक्तित्व-विकास में बाधक बनने लगता है तो उसे तोड़कर या छोड़कर नये नियम अथवा नये सामाजिक मूल्यों का निर्माण भी करना पड़ता है। बेशक रूढ़ि-भंग के लिए सर्वाधिक आक्रोश इस सर्वाधिक ऊर्जा भरी किशोर उम्र में ही होता है, पर तुम्हें जानना है कि जिस तरह सफल प्यार के लिए भी, एक समझदारी भरी उम्र होनी है (वर्षों से नहीं, समझ से आँकी गई उम्र), उसी तरह सफल विद्रोह के लिए भी। किशोरावस्था तो इन दोनों उपलब्धियों के लिए शारीरिक-मानसिक-भावात्मक तैयारी की उम्र है, जिसमें सर्वप्रथम ध्यान व्यक्तित्व विकास पर ही रहना चाहिए।"

'लेकिन मम्मी, जब ?" मीना ने टोका।

"हाँ, मैं उसी बात पर आ रही हूँ कि फिर भी जब बन्धन अधिक कसने लगें तो बन्धनों को कम करने की बात भी सोची जानी चाहिए कि अनावश्यक घुटन से मुक्ति मिले। लड़के-लड़कियों के सहज मेलजोल पर बड़े प्रतिबन्धों के कारण ही अनावश्यक, बल्कि कभी-कभी खतरनाक हद तक जाने वाली जिज्ञासा को बल मिलता है और अवांछित परिणाम भी सामने आते हैं। तो माता-पिता को अपने किशोर बच्चों की भावनाओं को समझना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि इस उम्र में उन्हें हमउम्र साथियों की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि अभिभावकों [illegible]ण की। उनके बीच सहपाठी-भावना, मित्र-भावना का विकास हो, [illegible]री-छिपे नहीं, माँ-बाप की जानकारी में निःसंकोच मिलें-जुलें, इसके उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साथ ही सारे ऊँच-नीच की

जानकारी देकर उन्हें उनकी सीमाओं से भी अवगत करा देना चाहिए। सीमाएँ, जो उन्हें जरूरी लगें, बंधन न लगें अपने हित में वे स्वयं को आत्म-अनुशासन में रखने में समर्थ हो सकें। आजादी के साथ जुड़े उत्तरदायित्व को जानना ही अपनी सीमाओं की पहचान करना है। माँ-बाप उन्हें केवल यह पहचान करा दें और फिर दूर से उनपर निगाह रखें, अपना हस्तक्षेप कम करके, उनपर विश्वास करें तो, मेरे विचार में, वे उनका विश्वास भंग नहीं करेंगे, बल्कि समय पर स्वयं उनकी सही सलाह की अपेक्षा रखेंगे। 'कोई उनके हितों की परवाह करने वाला है', यह अहसास ही उन्हें स्वयं में समर्थ बनाने के लिए काफी होता है। इसलिए ऐसा सोचना गलत है कि लड़के-लड़कियाँ माँ-बाप के संरक्षण की परवाह न कर स्वच्छंद होना चाहते हैं, बल्कि 'उनकी कोई परवाह नहीं करता', 'उनके लिए किसी के पास समय नहीं है' उपेक्षा का यह अहसास ही उन्हें गलत राहों पर भटका कर उच्छृंखल या घर वालों के प्रति विद्रोही बना देता है।"

"हाय मम्मी, तुम्हें यह सब कैसे मालूम? यही बात तो मैंने अपने कई दोस्तों से सुनी है।" लीना चहकी।

पर लता का धीरज अब तक जवाब देने लगा था। उसे अपनी समस्या का समाधान तो अभी तक मिला ही न था कि वह 'डेटिंग' को स्वीकार करे या अस्वीकार? और मम्मी हैं कि इतना लम्बा भाषण पिलाने लगीं। फिर भी उसने अब तक मौन रखा तो इसलिए कि यह सब सुनना भी उसे अच्छा लग रहा था। बस जरा 'डोज' ज्यादा हो गई और अपने उत्तर के इन्तजार में वह उखड़ गई। अब उससे न रहा गया, "पर मम्मी ?"

"तुम्हारी बेसब्री मैं समझ रही हूँ लता, इसलिए उसी प्रश्न पर आ रही हूँ।"

"प्रश्न? मैंने तो कोई प्रश्न नहीं किया था?"

"बनो मत, मैं जानती हूँ तुम क्या जानना चाहती हो! पर क्या तुमने ही शुरू में नहीं कहा था कि समस्या मेरी नहीं, सभी की है, इसीलिए मुझे जरा विस्तार में जाना पड़ा कि इस प्रथा की जरूरत-बेजरूरत पर बात करने से पहले उन पश्चिमी व भारतीय स्थितियों को समझा जाए, जिनमें वहाँ इसका स्वरूप क्या रहा, इसके [illegible] और यहाँ

इसका स्वरूप क्या हो कि वैसे परिणामों से बचा जा सके ?

"वैसे तो यह कतई जरूरी नहीं कि कोई विदेशी प्रथा हमारे अनुकूल नहीं है तो भी उसे अपनाया जाए, पर अब विभिन्न संस्कृतियां इतनी घुल-मिल गई हैं कि इन्हें पूरी तरह अलग कर पाना ही संभव नहीं रहा। ऐसी स्थिति में जरूरत है, नई-पुरानी, देसी-विदेशी, सभी अच्छी बातों का समावेश करके, अपनी सांस्कृतिक भूमि पर खड़े होकर, नए युग के अनुरूप नए मूल्यों का निर्माण करना। चाहे हम 'डेटिंग' नाम न दें, पर यह तो सभी जानते हैं कि हमारे यहां उस ढंग का मेल-मिलाप चोरी-छिपे ढंग से चल रहा है; खुल-अखल्ले से चल रहा है और इस प्रथा को सामाजिक मान्यता न देने वाले भी इसे रोक नहीं पा रहे। तो क्या भारतीय सामाजिक मर्यादाओं के भीतर इस मेलजोल के लिए कुछ नियम निर्धारित नहीं किए जाने चाहिए कि विवाह-पूर्व की यह मैत्री दोनों पक्षों के लिए स्त्री-पुरुष मनोविज्ञान समझने में सहायक हो सके ? लड़के-लड़कियां सफल जीवन-साथी के चुनाव के लिए मानसिक रूप से परिपक्व व समर्थ हो सकें ? आज हमारे यहां इस प्रथा की इसी रूप में जरूरत है, भले ही हम इसे यह नाम न देकर कुछ और नाम दें या कोई नाम ही न दें।"

"तो आपके ख्याल से मम्मी, ये नियम क्या होने चाहिए ?" अब लता बोली। जैसे इस घड़ी का ही उसे इन्तजार था।

"हां, यह प्रश्न ठीक उठाया है तुमने। पर यह सब भी क्या मुझे ही बताना होगा ? मेरे ख्याल में बाहर आते-जाते और सहेलियों, मित्रों के बीच उठते-बैठते अब तक अपने अनुभवों से ही जान चुकी होंगी तुम लोग कि कहां कितनी छूट ली जा सकती है ? कहां सीमा-रेखा खींचनी होगी ? अच्छा हो, तुम युवा लोग आपस में मिलकर ही ये नियम निर्धारित करो और केवल सहमति-असहमति के प्रश्न पर ही हमें बीच में लाओ—नहीं ?"

मां ने बारी-बारी से दोनों के चेहरों पर नजर टिका दी।

सहानुभूति अर्जित की जाती है। और फिर कारणवश मैत्री भंग हो जाने पर या बड़े सब्जबाग देखने-दिखाने, ऊँचे सपने पालने के बाद विवाह होने पर निराशा हाथ लगती है व दुष्परिणाम भी झेलने पड़ जाते हैं।"

"हाय मम्मी, आपको यह सब कैसे मालूम है? मेरी पहचान के कई लड़के-लड़कियों का यह हश्र मैं देख चुकी हूँ।" फिर लता की ओर मुखातिब होकर, "याद है लता, बोनू, टीनू और स्वीटी, संतोष की बात, उनके साथ क्या हुआ? ...लगता है, मम्मी को आसपास के लोग सब बता जाते हैं। ओह, भूल गई, मैं भी तो आकर इन्हें सब कहानियाँ सुनाया करती हूँ। मम्मी चुपचाप मेरी बड़बड़ सुना करती हैं। मैं समझती थी, रुचि नहीं लेतीं, मैं यों ही बोलती रहती हूँ। अब पता चला, ये सुनती ही नहीं, चुपचाप गुनती भी रहती हैं। कैसा विश्लेषण रहता है न इनके पास, इन सब घटनाओं का! ओह! मम्मी द ग्रेट..."

"बस-बस, और नहीं। या तो तू बोल ले या फिर मुझे लता के साथ अपनी बात पूरी करने दे।"

"लता के साथ नहीं, हम दोनों के साथ।"

"ठीक है। फिर सुन तो सही। अभी परीक्षा से पहले तुम लोग मिल-कर पिकनिक पर गए थे न, वैसे ही कभी-कभी बाहर सैर-सपाटे के लिए कुछ लड़के-लड़कियों को मिलकर अपना एक ग्रुप बना लेना चाहिए और तिथि निश्चित करके मिलते-जुलते रहना चाहिए। यही सामूहिक 'डेटिंग' होगी। इसी ग्रुप में से एक समय बाद किन्हीं लड़के-लड़कियों के बीच अन्तरंग मैत्रियाँ भी हो सकती हैं, जो एक-दूसरे को अपेक्षाकृत अधिक पसन्द करने लगें या जिनके विचार परस्पर अधिक मिलने लगें। तब भी, किसी एक से अन्तरंग मित्रता स्थापित हो जाने पर भी, उनके बीच एक-दूसरे की गरिमा, अस्मिता की रक्षा करने के लिए, एक-दूसरे का आदर करते हुए, अपनी मैत्री को एक गौरवमय ऊँचाई पर रखते हुए, एक मूक समझौता जरूरी है। सीमा-रेखा न लाँघने के लिए ही नहीं, आत्मबल जुटाने, आत्मनियंत्रण पाने के लिए भी और सामाजिक बाधाओं व अनावश्यक संदेह-अविश्वास वाले वर्तमान माहौल पर विजय पाने के लिए भी। माहौल ऐसे ही नहीं बदला करते। कुछ पाने के लिए कुछ त्याग भी करने

होते हैं। चोरी-छिपे मिलने की बात अपमानजनक समझने पर ही यह संभव है। लड़का जब भी अपनी मित्र लड़की को बाहर ले जाए, उसे कहीं बाहर आकर मिलने के लिए बाध्य न करे, उसके घर आकर उसे सम्मान के साथ अपने साथ ले जाए, फिर उसी तरह घर पर छोड़कर जाए। यदि वे अपने माता-पिता को यह विश्वास दिला सकें कि वे कोई गलत कदम नहीं उठाएँगे और जब भी कोई निर्णय लेंगे, उनसे सलाह-अनुमति लेकर या कम से कम उन्हें बताकर ही कोई कदम उठाएँगे तो आज बदले युग की माँग को समझकर कोई भी समझदार माता-पिता उसमें अड़चन नहीं डालेंगे। तब न उन्हें बदनामी का भय होगा, न घर की उपेक्षा या ताड़ना का। लड़के द्वारा अनुचित लाभ लेने या लड़की की असुरक्षा की संभावना भी क्षीण हो जाएगी।

"इस दृष्टि से भारतीय परम्परा में विवाह से कुछ समय पूर्व सगाई की जो रस्म चली आ रही है, उसे बढ़ावा देना भी ठीक होगा कि माता-पिता की निगरानी में वे एक-दूसरे को समझ-परख सकें। पर समयानुसार इसमें यह परिवर्तन जरूरी है कि सगाई को विवाह की गारंटी न माना जाए। मन न मिलने पर लड़का-लड़की सगाई तोड़कर स्वतन्त्र हो सकें। इसे बुराई या बदनामी के रूप में लेने के बजाए, एक अच्छाई के रूप में ही लेना चाहिए कि बाद में असफल दाम्पत्य होने या विवाह टूटने के बजाए, विवाह-पूर्व अलग हो जाना ही अक्लमन्दी है। पर सगाई के दौरान भी लड़के-लड़कियों को विवाह-पूर्व यौन-सम्बन्ध से बचना चाहिए। विशेष रूप से लड़कियों को तो यह सावधानी अवश्य ही बरतनी चाहिए, चाहे मामला सगाई का हो या प्रेम का या केवल मैत्री का। आपसी विश्वास और आत्मविश्वास दोनों दृष्टियों से यह जरूरी है कि सर्वोत्तम के समर्पण को सही समय पर अपने सर्वप्रिय व्यक्ति के लिए सँजोकर रखने का संतोष प्राप्त हो और आत्मसंयम द्वारा आत्मबल पाने का अवसर भी मिले, जो आगे जीवन-भर की सफलता की गारंटी होता है और दाम्पत्यक सद्भावना में सहायक। इसलिए सामूहिक मैत्री, सामूहिक 'डेटिंग' से आगे बढ़कर किसी एक से प्रेम करो, व्यक्तिगत 'डेटिंग' पर आओ तो इन बातों का ध्यान रखकर कि एकान्त में कम-से-कम मिलना है; मिलना है तो

एक-दूसरे का आदर करते हुए, अपनी अस्मिता, अपने परिवारों की इज्जत का ध्यान रखते हुए और अपने आत्मबल, आत्मसंयम का दामन थामे हुए। यही भारतीय 'डेटिंग' पद्धति होगी, यदि इसे यही नाम देना जरूरी हो तो।"

"लेकिन मम्मी, कितने माँ-बाप तुम्हारी तरह सोचने वाले मिलेंगे कि ऐसे 'डेटिंग' पद्धति चलाई जाए या अपने बच्चों पर इस तरह विश्वास कर उन्हें छूट दी जाए ?"

"आज न मिलें, कल मिलेंगे। लेकिन तब, जबकि आप युवा लोग अपने लिए स्वयं ऐसी आचार संहिता तय करोगे और अपने कृत्यों से माता-पिता को अपने विश्वास में लोगे। आज के बिगड़े माहौल के लिए जब हम, आप, सभी जिम्मेदार हैं तो बदलाव भी तो हमें ही लाना होगा न! युवा पीढ़ी पर ही हमारी सारी आशाएँ टिकी हैं, उनकी शक्तियों की बर्बादी और आपसी असामंजस्य में घरों की बर्बादी अब और सहन नहीं की जानी चाहिए। हाँ, मैं यह कब कहती हूँ कि 'डेटिंग' पद्धति चलाई ही जाए। हमें अपनी अस्मिता की पहचान पानी है, पश्चिम की नकल नहीं करनी है। पर जब तक अपने नए सांस्कृतिक मूल्य अस्तित्व में नहीं आते, यदि 'डेटिंग' जैसे शब्दों से ही काम चलाना हो तो बीच के रास्ते की तरह ऐसी प्रथाओं का इस तरह भारतीयकरण कर लेने में कोई हर्ज नहीं, मेरा इतना ही मतलब था। इसमें अच्छी प्रथाओं का, नए युग के अनुरूप अपने नए सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण आप लोगों ने ही करना है, हम पुरानी पीढ़ी के अंग्रेजी दासता में विरासत में पाए मूल्यों को ढोने वाले लोगों ने नहीं—बस इतना ही।"

लता तो अभिभूत थी ही, इतने बड़े दायित्व को वहन करने के गौरव से भर लीना भी गम्भीर हो आई। आज तक अपने से बाहर तो उसने सोचा ही न था। आज उसे लगा, सचमुच हम युवा लोग चाहें तो क्या नहीं कर सकते! वह दीपक से इसकी चर्चा करेगी और दोनों मिलकर अपने दायरे से बाहर दूसरों के लिए कुछ करने के बारे में भी सोचेंगे। 'दीप से दीप जले' की तरह एक-एक को साथ मिलाते हुए अपनी आवाज को बुलन्द करेंगे। दीपक ने तो इधर लेखन में भी अच्छा हाथ साध लिया

तकदीर के लिए तदबीर

लता और नरेश

लता कालेज के लिए घर से निकली कि सामने से आता पडोसी नरेश आज फिर उससे टकरा गया। पर अचानक टकरा ही गया, न नरेश आज रोमास के मूड मे था, न लता ही अब वैसी भावुक या छुईमुई-सी रह गई थी। अब तो वह सहज और व्यावहारिक हो गई थी।

तभी तो, जब एक औपचारिक-सो 'हलो' कहकर नरेश ने आगे बढ़ जाना चाहा, तो लता जैसे असहज हो आई। उसने लक्ष्य किया, आज न तो नरेश के कदमो में वैसा उत्साह था, न उसके हाथों मे बल्ला घुमाने की वह चपलता, न बातों में वह वाचालता ही। वह ठिठक गई, "क्या बात है नरेश, क्या खेल मे हार गए?"

"नहीं। पर हारता भी तो क्या, खेल मे हार-जीत तो चलनी ही रहती है।"

"फिर? रोज तो इस समय क्या ठाठ से बल्ला घुमाते निकलते हो, आज क्या हो गया?"

"कुछ नही। पर तुम मुझे क्या रोज आते-जाते देखती हो?"

मेरा कालेज के लिए निकलने

समय तो है रोज! यह अलग

कभी हो।"

ा।"

इस इरादे से समय का ध्यान रख-

है। क्यों न उसकी कलम का सहारा लेकर एक अभियान ही शुरू कर दिया जाए। और उनकी आंखों में उसी समय संकल्प का एक दीप जगमगा उठा। लता की आंखों ने तुरन्त इस लौ से दूसरी लौ को प्रज्वलित किया और यह क्रम आगे चल पड़ा। मम्मी उठकर आ चुकी थी। दोनों सहेलियों ने आपस में तय किया कि अब रोज-रोज मम्मी को तंग नहीं करेंगी। अब आगे का रास्ता उन्हें स्वयं तलाशना है। और इस संकल्प के साथ लता ने भी अपने घर की राह ली।

तकदीर के लिए तदबीर

लता और नरेश

लता कालेज के लिए घर से निकली कि सामने से आता पड़ोसी नरेश आज फिर उससे टकरा गया। पर अचानक टकरा ही गया, न नरेश आज रोमांस के मूड में था, न लता ही अब वैसी भावुक या छुईमुई-सी रह गई थी। अब तो वह सहज और व्यावहारिक हो गई थी।

तभी तो, जब एक औपचारिक-सी 'हलो' कहकर नरेश ने आगे बढ़ जाना चाहा, तो लता जैसे असहज हो आई। उसने लक्ष्य किया, आज न तो नरेश के कदमों में वैसा उत्साह था, न उसके हाथों में बल्ला घुमाने की वह चपलता, न बातों में वह वाचालता ही। वह ठिठक गई, "क्या बात है नरेश, क्या खेल में हार गए?"

"नहीं। पर हारता भी तो क्या, खेल में हार-जीत तो चलती ही रहती है।"

"फिर? रोज तो इस समय क्या ठाठ से बल्ला घुमाते निकलते हो, आज क्या हो गया?"

"कुछ नहीं। पर तुम मुझे क्या रोज आते-जाते देखती हो?"

"जाते नहीं, आते तो अक्सर देखती हूँ। मेरा कालेज के लिए निकलने का और तुम्हारा खेलकर लौटने का यही समय तो है रोज! यह अलग बात है कि हमारी भेंट रोज न होकर कभी-कभी हो।"

"तुम चाहती तो रोज भी हो सकती थी।"

"हां, हो तो सकती है। पर क्या इसी इरादे से समय का ध्यान रख-कर निकलना ठीक होगा?"

"क्यों, लोग उँगली न उठाएँ, इसलिए डरती हो?"

नहीं इतनी नहीं। पर ऐसा सोचें और करें ही क्यों, कि कि
उँगली उठाने का मौका मिले ? हम मित्र हैं तो क्या भी, क्यों सौहार्द
भाव से नहीं मिल सकते ? उसके लिए ऐसे मौके तलाशने की या छिप
दुराव रखने की जरूरत क्यों हो ?"

लगता है, 'लीला एण्ड कम्पनी' का रंग कुछ अधिक ही चढ़ ग
चुप कर।" फिर उसे कुछ शरारत सूझी, "भई तुम्हें एतराज न हो, इसे
है।"

"हाँ, ना ठीक है। पर वैसी ही जरूरत दूसरी ओर भी आये, तब
प्रतीक्षा नहीं करोगे ? उतावली और जल्दबाजी क्यों ?"

"जल्दबाजी न हो, जिज्ञासा तो है। उतावली न हो, उत्सुकता तो है।"

"कैसी जिज्ञासा ? किस बात के लिए उत्सुकता ?" लता ने नज
बचाकर कहा। आज फिर वह किसी भीतरी आशंका से भर सिहर उठी

"और मैं पूछता हूँ, तुम्हारे चेहरे पर यह कैसी चिन्ता ? क्या
तक आश्वस्त नहीं कर सका हूँ तुम्हें ?" नरेश ने लता की आँखों में
झाँका, फिर खिलखिला उठा।

लता फिर सिहर उठी, पर शीघ्र ही सँभल गई, "चलो हँसे तो"
उसने सीधा जवाब टाल, पलटकर पूछ लिया, "चिन्तातुर तो आज तु
दिखाई दे रहे थे। न जाने कहाँ खोए थे कि बस 'हलो' किया और च
दिए। मैं तो डर गई, न जाने क्या बात है ? इसीलिए रुक गई। अ
चलती हूँ, कालेज को देर हो जाएगी।" वह घड़ी देखने लगी।

नरेश फिर गम्भीर हो आया, "हाँ लता, सचमुच परेशान हूँ आज
कल। तुम तो जानती हो, पढ़ाई बीच में छोड़, बिजनेस में लग गया। प
बिजनेस क्या नौकरी जैसी निश्चिन्तता दे सकता है ?"

"कल तक तो कहते थे, नौकरी में क्या रखा है ? बिजनेस में म
है—अब ?"

"हाँ, काम की स्वतन्त्रता तो रहती है, आर्थिक अभावों से मुक्ति भी
मिलती है। अपने काम में मेहनत है तो मेहनत का फल भी है। कम से
कम नौकरी जैसे बन्धन तो नहीं। पर बिजनेस में चिन्ताएँ भी कम नहीं
होतीं।"

"अपने काम की स्वतन्त्रता चाहते हो, बिजनेस के फायदे लेते हो और चिन्ताओं से घबराते हो ?"

"तुम तो बात को ऐसे उड़ा रही हो जैसे यह कोई बात ही न हो ! ठीक है, तुम्हें बिजनेस का अनुभव नहीं। पर आजकल अगर मैं किन्हीं चिन्ताओं से घिरा हूँ तो क्या तुमसे बाँट भी नहीं सकता ?" नरेश का स्वर भीग आया।

लता को एक झटका-सा लगा। उसे अपनी मूर्खता का अहसास हो आया। एक क्षण लगा उसे सँभलने में, "क्यों नहीं, अगर यही न हो तो फिर मित्रता के मायने क्या ? बोलो, शाम को कहाँ मिलने हो ?" उसके स्वर में आश्वस्ति भर आई, "अनुभव तो नहीं। मैं कुछ जानती भी नहीं, फिर भी शायद कुछ काम आ सकूँ ! और कुछ नहीं तो हौसला तो बढ़ा ही सकती हूँ—नहीं ?" अब लता को उसकी आँखों में झाँकने का अवसर मिल गया।

नरेश अभिभूत हो आया, "मुझे तुमसे यही उम्मीद थी। सच मानो, और कोई अपेक्षा नहीं रखता, जब तक तुम न चाहो, नहीं रखूँगा।"

"और मैं कभी न चाहूँ तो ?" लता ने हँसकर शरारत से वातावरण को हल्का करने की कोशिश की।

"तो कभी नहीं।"

"सच ?"

"हाँ, सच ! प्रामिज।"

"ओह ! नरेश द ग्रेट।" लता ने उसका हाथ थाम लिया। इधर-उधर ताका, फिर जल्दी से हाथ छोड़, "अच्छा तो चलती हूँ। शाम को जरूर मिलूँगी। वहीं। प्रामिज।"

☐

"हाँ, अब बताओ, किस बात ने इस बुलबुले नरेश को यूँ गम्भीर बना दिया ?" लता अब इतमीनान से उसकी बात सुनने को तैयार हो कर आई थी।

"बात यह है लता, हमारा साझा बिजनेस है। पिताजी, बड़े भाई, मैं, तीनों ही मिलकर काम देखते हैं। एक छोटा भाई भी है, जो अभी

काम सीख रहा है। साथ में पढ़ना भी है।"

"और बहनें ?" मन्नू ने बीच में टोककर पूछ लिया। [illegible] उसे नरेश के परिवार की पूरी जानकारी भी मिल रही थी।

"बहनें दो हैं। एक की शादी हो गई है। दूसरी तो [illegible] ही हो, तुम्हारे कालेज में पढ़ रही है, तुमसे एक वर्ष पीछे।"

"समस्या क्या है ?"

"समस्या हमारे बीच नहीं, भाभी की ओर से खड़ी की गई है। [illegible] का ख्याल है, मुख्य काम उनके पति, यानि मेरे बड़े भाई संभालते हैं [illegible] मुनाफा हम सभी में बँटता है।"

"तो ?"

"तो क्या, उनका मतलब साफ है। घर में झगड़ा कर-करके [illegible] तरह अलग हो जाना। पति को उकसाकर उन्हें अपना बिजनेस अलग [illegible] लेने के लिए बाध्य करना।"

"कर लेने दो। तुम तो हो पिताजी के साथ। छोटे को भी [illegible] कर ही रहे हो। यह तनाव कम होना चाहिए।"

"यह तो ठीक है। पर बात इतनी आसान नहीं है। पिताजी से [illegible] ज्यादा मेहनत, दौड़-धूप नहीं होती। मेरा अनुभव भी अभी बड़े भैया [illegible] जितना कहाँ है ? और छोटा भाई तो पढ़ रहा है। पढ़-लिखकर धंधे में [illegible] बँटाएगा—या नौकरी कर लेगा, अभी उसका कुछ भरोसा नहीं। उस[illegible] बिजनेस में रुचि नहीं दिखती। मन लगाकर काम नहीं सीख रहा।"

"पर पिताजी का अनुभव तो तुम्हारे साथ होगा। उनकी पूँजी भी [illegible]

"पूँजी तो वही है, जो बिजनेस में लगी है। वह बँट जाएगी। बिजने[illegible] सफलता से चलता ही साझे में है। बँटने पर पूँजी ही नहीं बँटेगी, ग्राह[illegible] भी बँट जाएँगे। हमारे बीच प्रतिद्वंद्विता आ जाएगी, जिसका बाहर बु[illegible] असर पड़ेगा। मैं मेहनत से नहीं घबराता, पर मेरा अनुभव तो अभी क[illegible] ही है न ! ज्यादा सम्पर्क भाई साहब के ही हैं। तकदीर ने साथ न दिय[illegible] तो ? भाई तो भाभी व अपने दो बच्चों को लेकर अलग हो जाएँगे, परिवा[illegible] यानी माँ, बाबूजी, छोटा भाई, उसकी पढ़ाई, बहन की शादी, यह सब [illegible]

[illegible] ?"

का यश भी तुम्हें मिलेगा कि नहीं ?" लता
ातावरण को एक झटके में हल्का कर दिया।
लता को ताकता रह गया। उधर वह भाभी हैं, जो परिवार
ाहती हैं। इधर यह लता है, जो मुझे मेरे परिवार से जोड़ना
उसका आत्म-बल कुछ बढ़ा, "बात तो तुम्हारी काबिले तारीफ
... उठाने लायक सिद्ध न हुआ तो ? बिजनेस तो तकदीर
।"
ीर का ही नहीं, तदबीर का भी। बल्कि तकदीर से अधिक
ही।" लता ने हिम्मत बँधाई, "इस तरह घुटने, चिंतित रहने
तुम्हें आत्मनिर्भर बनने के बारे में ही सोचना चाहिए। आत्म-
ही आत्मविश्वास जागता है और आत्मविश्वास से ही सफलता
हो सकती है।"
को लगा, जैसे उसके भीतर का खोया आत्मविश्वास जाग रहा
विश्वास ही नहीं, स्वाभिमान भी। फिर भी, "लेकिन मारुती
ैसे इस्तेमाल कर सकती हो ?" वह बोल उठा, "कोशिश ही तो
ती है ! सफलता तो ऊपर वाले के हाथ होती है।"
श, ऊपर वाले के हाथ होती है। पर 'ऊपर वाले' में आस्था
। अपना आत्मविश्वास जगाए रखकर कोशिश करते जाना ही
ता की कुंजी नहीं ?"
सकती है। लेकिन ..."
ल क्या, दूसरों की कृपा या सहायता से हम जो पाते हैं, उसमें
न का तनाव न हो, तब भी क्या आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास,
र जैसी आनंदानुभूति मिल सकती है ? भले ही अपने बलबूते
ौतिक ... मिले, पर उसके बदले हम जो पाते हैं,
...गा, कम हरगिज नहीं। आत्मनिर्भर न
... रूप से ही दुर्बल पड़ जाते
...।
हो। इस तरह तो अभी तक मैंने सोचा ही न
।" नरेश अब पहले से अधिक गंभीर हो आया।

"सोचना पड़ेगा नहीं, नरेश, सोचो, इसी दिशा में सोचो।
तुम्हें अपने पैरों खड़ा ही नहीं होना है, विजित पिता का • . '
है। ऐसा लक्ष्य सामने रखते ही तुम्हारी संकल्प-शक्ति, इच्छाश
आत्मशक्ति बढ़ेगी। हम अपने भीतर यह उपलब्धि पा लें तो फि
उपलब्धि क्या चीज रह जाती है ?"

नरेश हैरान हो लता की तरफ देखता रह गया, रुक-रुकर
पाया, "तुम तो कहती थी, तुम्हें किसी बात का अनुभव नहीं, यह
कैसे सीखा ?"

"तुमसे मेरा परिवर्तन छुपा हुआ है क्या ? कुछ समय पूर्व मैं
ही निराश, हताश रहा करती थी, इसलिए चिंतित भी कि कुछ भी
मेरे लिए सम्भव नहीं होगा। फिर हुआ कि नहीं ?"

"ऐसा क्या हमेशा सम्भव है ?"

"हाँ है। संकल्प-शक्ति, इच्छाशक्ति जगाकर सब सम्भव है।
है, केवल अपने भीतर की सोई शक्तियों को जगाने की ही।

"जानते हो, मैडम मेरी क्यूरी कैसे महान वैज्ञानिक बनी
अठारह वर्ष की आयु में एक धनी परिवार में अल्प शिक्षित परि
थी। बड़े दिन की छुट्टियों में उस परिवार का लड़का घर आया,
आसक्त हुआ, दोनों में प्रेम हुआ और मेरी बुरी तरह अपमानित क
से निकाल दी गई। उस समय वह कितनी व्यथित, दीनहीन और
थी। पर उसके भीतर कुछ बनने का संकल्प जागा और वह वैज्ञा
गई—दो बार नोबल पुरस्कार पाने वाली महान वैज्ञानिक।

"स्वामी विवेकानन्द, काशी में बन्दरों से डरकर भागे। बन्दरों
किया। एक वृद्ध देख रहा था। उसने कहा, 'भागो नहीं, डटकर
करो।' विवेकानन्द उनके सामने तनकर खड़े हो गए और बंदर
भाग गए। इससे विवेकानन्द के भीतर जो आत्मबल जागा, उसने उन्हें
चमत्कार क्या नहीं बना दिया ?

"महान क्रान्तिकारी क्या अपनी युवावस्था तक क्या थे ? 'अ
लिंकन कैसे घर में पैदा हुए थे ?• और सुनोगे ?"

"बस-बस, मास्टरनी जी, लगता है, मु

आज इतना ही लेक्चर रहने दो। मुझे सोचने का मौका तो दो!"

"दिया।" कहकर वह खिलखिला उठी, "फिर भी मैं जानना चाहती हूँ कि आया कुछ ख्याले शरीफ में ? मैं लेक्चर नहीं दे रही। केवल यह बता रही हूँ तुम्हें कि तकदीर के भरोसे न बैठो, तदबीर से उसे बनाओ भी। तदबीर से तो बिगड़ी तकदीर भी बनती है, तुम्हारी तो अच्छी-खासी है।"

"अच्छा देवीजी, अब मुझे भी कुछ कहने, कुछ बोलने का मौका दोगी कि नहीं ?"

"बोलो भक्त, क्या बोलना चाहते हो ?" लता शरारत से आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाकर देवी का अभिनय करने लगी।

"इस उठे हाथ से तो कुछ माँग भी सकता हूँ मैं ?"

"अवश्य। पर जरा सोच-समझकर माँगना बच्चा।" और 'बच्चा' कहने के साथ ही उसने शरमाकर सिर नीचा कर लिया।

"तदबीर से तकदीर बनाने में तुम मेरा साथ दोगी, तभी न गारंटी होगी उसकी ?" नरेश ने टटोला।

"सोचेंगे, इसपर भी सोचेंगे। पर जरा स्वतंत्र निर्णय लेने लायक तो हो लें! यह नहीं कि घर वालों ने जरा विरोध किया और हमने घुटने टेक दिए कि भई हम तो अभी नाबालिग हैं, क्या कर सकते हैं ?" उसकी निगाहों में अर्थ था।

नरेश ने उस अर्थ को पकड़ा, आत्मसात किया, फिर कहा, "तथास्तु।" अब अभय मुद्रा में हाथ इस ओर उठ गया था।

दोनों खिलखिलाए, फिर उठकर अपनी-अपनी राह चल पड़े।

बोरियत क्यों ?

लता, सीना और मित्र-मण्डली

परीक्षाएँ निबट चुकी हैं। परिणाम आने में अभी कई दिन शेष हैं। निरन्तर पढ़ाई की व्यस्तता में कुछ दिन सभी अलग-अलग पड़ गए थे। फिर थकान उतार रहे थे। पर दो-तीन दिन ही आलस्य-आराम में बिताकर वे लोग ऊब गए। सो एक-दूसरे से सम्पर्क किया और आज शाम मित्र-मण्डली फिर आ जुटी—सीना, दीपक, लता, सीपी, अलका, सोनू, स्मिता, मुक्ता, राजीव, रमण, हर्ष और राकेश।

नरेश अपने कारोबार की व्यस्तता के कारण नहीं आ पाया। समीर शहर से बाहर चला गया है। शायद अलका इसलिए भी अधिक 'बोर' हो रही थी। उसने आते ही जैसे गोली दाग दी, "भई, हम तो बोर हो गए घर में बैठे-बैठे और तुम लोग आज भी टाल रहे थे ?"

"क्यों ? कुल जमा तीन दिन ही तो हुए हैं परीक्षा खत्म हुए और तुम बोर भी हो उठी ?" सीना ने टहोका, "समीर यहाँ नहीं है, शायद इसलिए ?"

"नहीं सीना, वैसे तीन दिन क्या कम होते हैं, घर में बोर होने के लिए ?" अलका कसमसाई।

"क्या बात है अलका, ऐसी उखड़ी-उखड़ी क्यों हो ? घर क्या बोर जगह होती है ?" स्मिता ने स्मित हास्य बिखेरा।

अलका चिढ़-सी गई, "इसमें हँसने की क्या बात है ? घर क्या, कोई भी जगह बोर हो सकती है, जहाँ लगातार रहना पड़े। कोई भी काम बोर हो सकता है, जो एक ही ढर्रे पर रोज चलता हो।"

"यह तो अपनी-अपनी मनःस्थिति पर निर्भर करता है कि कोई जगह

"हाँ, भौतिकता की अंधी दौड़ में फँसे आज के अधिसंख्य लोग (शिक्षित-अशिक्षित सभी लोग) प्राय: उद्देश्यहीन, दिशाहीन जीवन जी रहे हैं, इसलिए आशा-आस्थाविहीन हैं। इसीलिए निरन्तर किसी उत्तेजक किसी सनसनी की तलाश में रहते हैं। और इसके अभाव में वे बोर होने लगते हैं। दूर क्यों जाएँ? हमारे जैसे कुछ प्रबुद्ध कहे जाने वाले भी बौद्धिकता की खुराक के बिना बोर नहीं होने लगते? बौद्धिक बहस भी एक तरह से उत्तेजना की तलाश ही है। इसके अलावा और कोई उद्देश्य प्राय हमारे पास नहीं होता।" दीपक ने समाधान किया।

"क्यों नहीं होता?" रमण बोल उठा।

"बिल्कुल नहीं होता, ऐसा मैंने नहीं कहा। मैंने कहा है, प्राय: नहीं होता। होता भी है तो कितनों के पास?"

"यह क्या चुनौती है, तुम्हारे सिवा सब सबके लिए?" हर्ष का स्वर उग्र हो आया।

"नहीं यार, मेरा आशय यह नहीं था। पर चुनौती रूप में लें, तो भी क्या बुरा है? उससे कोई मकसद ही हाथ लगेगा न! नहीं लगेगा, तो हम उसके लिए सोचेंगे, उसे तलाशेंगे, उसके लिए दिशा पकड़ेंगे। यह क्या कम है?"

"यानी भटकेंगे।"

"व्यर्थ की भटकन से तो यह भटकन भली।" दीपक ने उफनते दूध पर जैसे पानी का छींटा दे दिया।

उफान बैठ गया पर प्रश्न में से प्रश्न निकल रहे थे और बहस चल पड़ी थी। [illegible], मीना को यह सब देख-सुनकर अच्छा लग रहा था। पर उन्हें लगा, लड़कियाँ बातचीत में पीछे छूट रही हैं। उन्होंने एक-दूसरी को इशारा किया और बहस में कूद पड़ीं। पहले मीना ने अपने हाथ में [illegible] ली, "लेकिन मूल प्रश्न से तो आप लोग दूर हो गए हैं। मेरा प्रश्न [illegible] था कि एक जैसी परिस्थिति में भी कोई बोर होता है, कोई नहीं? कोई कम बोर होता है, कोई अधिक? ऐसा क्यों?"

"ऐसे तो प्रश्न ढंग से इसका जवाब दिया ही जा [illegible]।" [illegible] बहनों, और [illegible] अनुभव था, अपना जाना हुआ बताऊँ।"

"यही न कि हम वही, जिस काम मे रुचि नही लेते, वही बोरे होने लगते हैं। लेकिन एकरस काम, एकरस जीवन, जीवन का रोज एक जैसा ढर्रा रुचिकर हो कैसे सकता है ? हम उससे ऊबेंगे ही।" अलका ने प्रतिवाद किया।

"तब तो सूरज का रोज एक दिशा से निकलना, दूसरी दिशा मे अस्त होना, हमारा रोज-रोज सांस लेना, वक्त पर नींद लेना, भोजन करना, सोच जाना आदि दैनिक ढर्रे के ये सारे कार्यकलाप भी बोर करने वाले होने चाहिए। लेकिन क्या ऐसा होता है ? हर खाने के बाद अगले खाने के वक्त की हम नई उत्सुकता से प्रतीक्षा नही करने लगते ?" स्मिता ने फिर एक स्मित-बाण छोड़ा।

अलका उसे ताकती रह गई, "कितने पते की बात की है स्मिता ने। सचमुच इस ढंग से तो उसने कभी सोचा ही नही था, उसे कोई जवाब नही सूझा, तो लीना ने उसी बात का सूत्र पकड़ उसे आगे बढ़ा दिया, "यही बात हमारे रोज के, घर के, स्कूल-कालेज के या दफ्तर के काम-काज पर भी लागू होती है। जो कार्य हमारी दैनिक जरूरत से जुड़े हैं, वे हमें पसन्द हैं या नहीं, उन्हें किए बिना गुजारा नही चल सकता। जब उनके बिना गुजारा नहीं तो हमें उनकी आदत डालनी होती है। यह आदत ही फिर ढर्रा बन जाती है, जिसमें हम ढल जाते हैं। ढल जाने का मतलब ही है, हम उसमे रुचि लेने लगते हैं। अपनी आवश्यकता और अपनी रुचि का मेल बैठा लें तो बोरियत को कहाँ जगह मिलेगी ? वह तो इस तालमेल के अभाव में ही सिर उठाती है न ?"

"लेकिन यह तालमेल क्या इतना आसान है ? परिस्थितियाँ क्या अपने हाथ में होती हैं ? इस काम का चुनाव अक्सर हमारे हाथ मे कहाँ होता है ?" अलका ने फिर शंका उठाई।

"बेशक नहीं होता। यह सही है कि न हमेशा काम हमारी पसन्द का होता है न परिस्थितियाँ ही हमारे हाथ में होती हैं। पर जीवन में जटिलता न हो, संघर्ष न हो तो हमारे लिए करने को ही क्या रह जाएगा ? बैठे ठाले सब काम आसानी से होते जाएँ तो जिन्दगी क्या ज्यादा बे-मजा नहीं हो जाएगी ? तब उसमें ज्यादा बोरियत नहीं होगी ?" उत्तर लीना

[दीप]नू ने इतनी सगत बात कही कि सब उसकी ओर देखते रह गए और [ल]ता अपने भीतर सिकुड़कर सोचती रह गई कि भला हो सीना का, [जि]सने उसे समय पर उबार लिया, वर्ना वह कहीं की न रहती।

"यह सोचना भी गलत होगा कि दूसरे आपके आगे-पीछे नहीं हो रहे [तो] आप अलोकप्रिय या असफल हैं। दरअसल आज सबको अपनी लड़ाई [आ]प ही लड़नी होती है। मित्र इसमें कुछ सहायक तो हो सकते हैं, इसीलिए [अ]च्छे मित्रों की जरूरत भी होती है, पर उनपर निर्भर करना या उनसे [अ]धिक अपेक्षा रखना अपने आपको कमजोर बनाना और निराशा में [ढ]केलना है। फिर निराशा, कुंठा, अकेलेपन का अहसास, खालीपन का बोध [ही] तो ऊब या बोरियत को जन्म देता है—नहीं?" कहकर दीपक ने लता [क]ी तरफ ताका।

लता एक क्षण जरा विचलित हुई, दूसरे क्षण अपने भीतर से शक्ति [ब]टोर लाई, "सब बातों की एक बात कि अपनी स्थिति या परिस्थिति जो [भ]ी है, जैसी भी है, उससे पलायन के बजाए उसकी सच्चाई और उसकी अनिवार्यता को मन से स्वीकार लें, सहजता से अपना लें, तो इस मानसिक स्वीकृति से ही स्फूर्ति और शक्ति मिलने लगती है। तब उसी ढर्रे के जीने [मे]ं सरसता, स्वच्छता, सुन्दरता और नवीनता का आविष्कार हम स्वयं करने लगते हैं। यानी बोरियत से, निराशा से बचने का उपाय बाहरी परिवेश बदलकर नहीं, यह प्रायः संभव भी नहीं होता, अपने भीतर से नवीनता और स्फूर्ति का आविष्कार करके ही कर सकते हैं। अपने भीतर [क]ा आविष्कार यानी अपना आविष्कार।"

लता के मुंह से ऐसी गहरी, आत्मविश्वास भरी, गरिमामयी वाणी सुनकर सबको कुछ अचम्भा हुआ, पर सीना, दीपक को नहीं। उन्होंने एक-दूसरे पर अर्थपूर्ण निगाह डाल संतोष की सांस ली।

तभी स्मिता ने, "भई वाह!" कहकर सबका ध्यान खींचा, "आज तो लता ने कमाल कर दिया। मैं समझती हूं, हमारी आज की बहस बहुत सार्थक रही।"

"इसमें क्या शक है! मेरे तो कुछ भीतरी जाले छंट गए।" अलका ने समर्थन किया। पर आज की यह गोष्ठी अब विसर्जित की जानी चाहिए,

को जगह लगने न दिया।

"बाकी हर तरह बोरियत। किसी तरह छुटकारा नहीं। तब क्या इससे बचने का कोई उपाय है?" अलका ने फिर प्रश्न दाग दिया।

"है क्यों नहीं? कोशिश करके काम अपनी पसन्द का चुनो। नहीं तो उसमें रुचि लेकर उसके लिए अपने में योग्यता-क्षमता जुटाकर, उसे अपनी पसन्द का बना लो। कोशिश से निखार ही नहीं होगा, उन्नति का द्वार भी खुलेगा।" मीना ने जैसे बात का सिरा बढ़ा दिया।

पर अलका की तसल्ली नहीं हुई, "माना, सदा सामने रखकर काम में भिड़े रहने, जिन्दगी की प्रतियोगी दौड़ में आगे निकलने की धुन में व्यस्त रहने से बोरियत कम होगी। पर जैसे ही फुरसत के क्षण आएँगे, एक जैसे काम की काम के एक ही ढर्रे की नीरसता क्या अखर नहीं जाएगी?"

'इन्हीं क्षणों के लिए तो 'हॉबियों' का महत्त्व है। काम के बीच-बीच में काम करने का ढंग कुछ बदल लें, फुरसत के समय कुछ बदला हुआ काम कर लें, कुछ समय भ्रमण में, प्रकृति, दोस्तों की गपशप में बिता लें, अपनी मनपसन्द की कुछ हॉबियाँ अपना लें तो दैनिकचर्या की एकरसता को अवश्य भंग किया जा सकता है।' यह दीपक था।

"अपनी जीवन-शैली में, रहन-सहन में, खान-पान में, तौर-तरीकों में विविधता लाते रहें, नवीनता भरते रहें, तो व्यक्तित्व में ताजगी और स्फूर्ति अपने आप ही आएगी। तब न अकेलेपन से ऊब होगी, न एकरसता की शिकायत।" स्मिता ने जोड़ा।

"अकेलेपन की ऊब से बचने के लिए अपनी कुण्ठाओं से, ईर्ष्या-द्वेष से मुक्ति भी जरूरी है। घृणा, ईर्ष्या प्यार की दुश्मन है और हर समय अपनी परिस्थितियों का रोना रोकर अपने आप पर तरस खाने के लिए दूसरों को अपनी ओर खींचने का मतलब होता है, उन्हें अपने से और दूर करना। याद रखना चाहिए कि लोग बहुत व्यस्त हैं और उन्हें दूसरों की परवाह करने की हमेशा फुरसत नहीं रहती। उन्हें परवाह करने के लिए बार-बार टहोके लगाने का अर्थ होगा, अपनी ओर से और बेपरवाह करना और अपनी कुण्ठाओं को, अकेलेपन की ऊब को और बढ़ावा देना।" इस बार

मोनू ने इतनी सगत बात कही कि सब उसकी ओर देखते रह गए और अलका अपने भीतर सिकुड़कर सोचती रह गई कि भला हो लीना का, जिसने उसे समय पर उबार लिया, वर्ना वह कहीं की न रहती।

"यह सोचना भी गलत होगा कि दूसरे आपके आगे-पीछे नहीं हो रहे तो आप अलोकप्रिय या असफल हैं। दरअसल आज सबको अपनी लड़ाई आप ही लड़नी होती है। मित्र इसमें कुछ सहायक तो हो सकते हैं, इसीलिए अच्छे मित्रों की जरूरत भी होती है, पर उनपर निर्भर करना या उनसे अधिक अपेक्षा रखना अपने आपको कमजोर बनाना और निराशा में धकेलना है। फिर निराशा, कुंठा, अकेलेपन का अहसास, खालीपन का बोध ही तो ऊब या बोरियत को जन्म देता है—नहीं?" कहकर दीपक ने लता की तरफ ताका।

लता एक क्षण जरा विचलित हुई, दूसरे क्षण अपने भीतर से शक्ति बटोर लाई, "सब बातों की एक बात कि अपनी स्थिति या परिस्थिति जो भी है, जैसी भी है, उसमें पलायन के बजाए उसकी सच्चाई और उसकी अनिवार्यता को मन से स्वीकार लें, सहजता से अपना लें, तो इस मानसिक स्वीकृति से ही स्फूर्ति और शक्ति मिलने लगती है। तब उसी ढर्रे के जीने में सरलता, स्वच्छता, सुन्दरता और नवीनता का आविष्कार हम स्वयं करने लगते हैं। यानी बोरियत से, निराशा से बचने का उपाय बाहरी परिवेश बदलकर नहीं, यह प्रायः संभव भी नहीं होता, अपने भीतर से नवीनता और स्फूर्ति का आविष्कार करके ही कर सकते हैं। अपने भीतर से आविष्कार यानी अपना आविष्कार।"

लता के मुँह से ऐसी गहरी, आत्मविश्वास भरी, परिमाणमयी वाणी सुनकर सबको कुछ अचम्भा हुआ, पर लीना, दीपक को नहीं। उन्होंने एक-दूसरे पर अर्थपूर्ण निगाह डाल संतोष की साँस ली।

तभी स्मिता ने, "भई वाह!" कहकर सबका ध्यान खींचा, "आज तो लता ने कमाल कर दिया। मैं समझती हूँ, हमारी आज की बहस बहुत सार्थक रही।"

"इसमें क्या शक है! मेरे भी कुछ भीतरी जाले छँट गए।" अलका ने समर्थन किया। पर आज की यह गोष्ठी अब विसर्जित की जानी चाहिए,

बहुत देर हो चुकी है।"

"क्यों, क्या इसमें भी बोर हो गईं ?" दीपक ने ठहाका लगाया।

"नहीं दीपू, कहा न, मेरे काफी जाले साफ कर दिए हैं तुम लोगों ने। पर अब चलना नहीं चाहिए क्या ?"

"बेशक चलना चाहिए। पर पहले कॉफी हाउस की ओर, फिर घर। इतनी सारी बहस के बाद अब दिमाग को कुछ दूसरी खुराक भी तो चाहिए।"

सभी ने सहमति में सिर हिलाया, काफी-फरमाइश पर दीपक को दाद दी फिर यह खुली-खिली मित्र-मण्डली अपने गंतव्य की ओर बढ़ चली।

अपना रास्ता आप

मित्र-मण्डली

परीक्षा और परीक्षा-परिणाम के बीच का समय भी एक उपलब्धि है, जब किशोर-किशोरियों को इत्मीनान से मिल-बैठकर आगे की दिशा चुनने का अवसर मिल जाता है। कुछ दिन सुस्ता लिए, कुछ दिन सैर-सपाटे में बिता लिए, 'बोर हो लिए', 'बोरियत' पर चर्चा कर उससे निजात पाने की राह भी निकाल ली। अब तो आगे की बात ही सोचनी है। सोचनी ही नहीं, उस दिशा में अग्रसर भी होना है। इसलिए आजकल प्रायः रोज ही शाम को किसी न किसी जगह मित्र-मण्डली आ जुटती है, भले ही ग्रुप के सदस्यों की संख्या कम-ज्यादा रहे—इन दिनों उन्हें अपने कैरियर के सम्बन्ध में राय लेने या किसी से मिलने जाना जो पड़ता है।

शाम की बहसों के विषय भी अब अक्सर कैरियर, रोजगार, दफ्तरों का माहौल, कठिन प्रतियोगिता, शहर से बाहर जाकर अकेले रहने की समस्या, खर्च का जुगाड़, आड़े आने वाली घरेलू परिस्थितियाँ आदि ही होते हैं। वक्त बदल गया है। गाँवों-कस्बों में चाहे अभी तक भी छोटी उम्र में शादियों का रिवाज रहने से जीवनसाथी के चुनाव की बात को प्राथमिकता दी जाती हो, नगरों और महानगरों में प्रायः यह चर्चा दूसरे स्थान पर जाकर गौण हो गई है। दोस्तियाँ भले ही चलती रहें, शादी का जिक्र आते ही 'अभी क्या जल्दी है?' 'पहले अपने पैरों खड़े तो हो लें!' वाला समझदारी-भरा उत्तर मिलता है।

"कोई मजाक थोड़े ही है यार, आज की प्रतियोगी जिन्दगी, कि मन-चाहे कैरियर के प्रशिक्षण के लिए प्रवेश पा लें या इच्छित नौकरी खोज लें!" सोनू ने आते ही गोली दाग दी। वह शायद कहीं से नकारात्मक

मे ही हिम्मत हार बैठें ?"

"हाँ, सोनू, दीपक ठीक कह रहा है। जमाना जैसा है, उसे हम-तुम एक झटके मे नहीं बदल सकते। हमें तो जो स्थितियाँ हैं, उन्हीं में से अपनी राह आप बनानी है—सरलता से या कठिनता से, अन्यथा हमारे इतने दिन के व्यक्तित्व-प्रशिक्षण के क्या माने ?" यह स्मिता थी।

अब लता की भी हिम्मत बढ़ी बोलने के लिए, "स्थितियाँ हमेशा ठीक नही होतीं, पर यह क्या हमारे दृष्टिकोण पर भी निर्भर नही कि हम उन्हें कैसे देखते या लेते हैं ? स्थितियाँ आसानी से बदली भी नहीं जा सकतीं, पर क्या निरन्तर कोशिश से उनमें सुधार भी नहीं लाया जा सकता ? सबको न मनचाहा परिवेश मिलता है, न मनचाहा कॅरियर। पर कोशिश से परिवेश को भी कुछ [illegible] मन-माफिक बनाया ही जा सकता है, इसी तरह जिस कार्य-क्षेत्र को अनिवार्यता आ पड़े या जो अपनी पहली पसन्द के बाद दूसरी-तीसरी पसन्द के रूप मे चुनना पड़े, उसमे भी रुचि लेकर, लगन और मेहनत से आगे तरक्की के रास्ते खोले जा सकते हैं। नहीं, तो तब तक तो उसे अपनाया ही जा सकता है, जब तक दूसरा बेहतर अवसर न मिले—नहीं ?" कहकर उसने जैसे अपनी बात का समर्थन चाहा।

लीना ने खुश होकर लता की हाँ मे हाँ मिलाई। लता के अनुभव मे से छनकर आई इस बात मे उसे अपने प्रशिक्षण की सफलता जो दिखाई दे रही थी।

पर खिल आई,

एक उत्साह से भर वह बोल उठा,

प्रतिभावान लोगो की बात

वाले सुविधाजीवी

को तो योग्यता और

पड़ती है। फर्क इतना ही

अभिभावक चुनें या

। उनकी सहमति न हो

... न मौका ढूंढकर पहले उनको दिखाई कैसी भी राह पर चलें, फिर अपना आक्रोश उनपर उतारने दिवें।"

"ऐसा क्या हर बार सम्भव है?" इस बार हर्ष ने शंका उठाई।

"नहीं। पर असम्भव को सम्भव बनाना विपरीत स्थितियों में से भी राह निकालना ही तो वह पुरुषार्थ है जिसका हम मांओं ने मतलब लिया है। मनचाहा हो न हो, शालीन करना तो हमें कौन रोक सकता है? शालीन भी छोड़ देंगे तो फिर हमें वर्तमान समाज से शिकायत-भर करने का क्या हक है? और फिर इसे बदलना कैसे जाएगा?"

"और ही तो मुख्य बातें हैं - १. पहले स्वयं को पहचानना, २. फिर अपनी शक्तियों और रुचियों का विकास कर उनके अनुरूप लक्ष्य चुनकर उस लक्ष्य की ओर बढ़ना और ३. फिर जिस काम को हाथ में लें, उसे पूरी लगन से सीखना, पूरी ईमानदारी व मेहनत से करना कि अपनी क्षमताओं का विकास हो और काम में सफलता व तरक्की मिले। कैरियर कोई भी हो, ये तीन बातें हमारे साथ हों तो न निराशा के लिए कोई कारण है, न असफलता के लिए।" हर बात को आशावादी दृष्टिकोण से देखने, आदर्शवादी बात के रखने व सरलीकृत तरीके से प्रस्तुत करने वाली यह लीला थी।

"बातें इतनी सरल नहीं होतीं दीदीजी, लगता है, आपने कभी सघर्ष किया-देखा नहीं।" सोनू ने छींटा कसा।

"सघर्ष आज सभी करते हैं। हां, कोई कम, कोई ज्यादा। जानती हूं, बातें सब इतनी सरल नहीं होतीं, पर सकारात्मक दृष्टिकोण से देखने पर वे सरल लगती हैं, नकारात्मक दृष्टिकोण से देखने पर वे ही कठिन लगने लगती हैं, क्या इस तथ्य से भी तुम सहमत नहीं सोनू?" लीला ने उसकी ओर प्रश्न उछाला।

स्थिति स्मिता ने संभाल ली, "अच्छी-भली चर्चा को बेकार की बहस में उलझाओ मत। मुख्य मुद्दा है, कैरियर और सही कैरियर का। कैरियर तो कोई भी हो सकता है, सही कैरियर का चुनाव न तो सरल होता है, न पूरी तरह वश, पचास-साठ प्रतिशत भी आज अपने हाथ में। तब अपनी राह आप निकालने की बात तो ठीक, पर कैसे? चर्चा इस मुख्य मुद्दे पर

ही केन्द्रित होनी चाहिए कि वक्त जाया न हो।"

"हां, यह हुई न बात ! सच स्मिता, तुम कभी-कभी बहुत सुलझी हुई बात करती हो।" हर्ष ने उसे 'कम्पलीमेंट' दिया।

"धन्यवाद !" स्मिता शर्माई नहीं, मजाक के मूड मे हो आई, "कभी-कभी ही अच्छी बात करती हूं ?"

"अच्छी माने सुलझी हुई।"

"शेष दिनों मे उलझी हुई ?"

"अब छोड़ो भी, फिर बेकार बहस है और इसमे वक्त जाया हो रहा है, यह तुम्ही कहोगी।" लीना ने टहोका।

तभी बाहर से नरेश आता दिख गया। लता जरा खिली, फिर उसने उसे सूचना दी, "आज सारी चर्चा कॅरियर पर केन्द्रित है· यानी सही कॅरियर के चुनाव पर।"

"किन्ही बिजनेस लाइनो की जानकारी चाहिए तो जो मैं जानता हूं, बता सकता हूं।" नरेश ने अपना सहयोगी हाथ बढ़ाया।

"वे तो उनके लिए होगी, जिनके पास पूंजी होगी।" हर्ष ने अपनी जिज्ञासा रखी।

"जरूरी नहीं। बिना जानकारी, बिना रुचि, बिना मेहनत पूंजी डुबोई भी जा सकती है। दूसरी ओर कम पूंजी से, बिना पूंजी लगाए भी लोग सफल होते देखे गए है। जिन्हे इस ओर लगन होती है, वे पहले किसी के पास काम करके, किसी के साथ लगकर या थोड़ी पूंजी लगाकर किसी के साथ हिस्सेदारी में अनुभव प्राप्त करते हैं, फिर अपना अलग बिजनेस खोल लेते है या पूर्व छोटे बिजनेस को बढ़ा लेते हैं।"

"हां, नरेश भाई, आपकी बात मे दम है। हम सचमुच आपसे कुछ सीखना-समझना चाहेगे, कल, परसो या जब भी आपके पास समय हो ?" सोनू की बुझी-सी आंखो मे अब चमक बढ़ आई थी। शायद उसका रुझान इधर ही था, जिसे वह अब तक पहचान न पाया था और एक परचे मे कम अंक पाने की आशंका से भयभीत इधर-उधर निरर्थक भटक रहा था।

"यही क्यो, हम तो सभी संभावित कार्य-क्षेत्रो के बारे में पूरी-पूरी जानकारी पाना चाहते हैं। कई बार तो केवल इसीलिए गलत लाइनें चुन

कैरियर गर्ल

लता और सोना

परीक्षा-परिणाम आ गए। इस ग्रुप के लगभग सभी लड़के, लड़कियाँ अच्छे नम्बरों से पास हुए। सोनू की ही मध्यम श्रेणी आई, शेष सबने प्रथम श्रेणी लेकर कालेज में रिकार्ड बनाया, किसीने एक-दो विषयों में विशेष योग्यता दिखाई, दीपक ने प्रथम श्रेणी के साथ प्रथम स्थान भी प्राप्त किया। इस तरह इस ग्रुप की बैठकों को लेकर मजाक उड़ाने या तरह-तरह की बातें बनाने वालों का न केवल मुँह बन्द हो गया, चारों ओर उनकी योग्यता के चर्चे भी होने लगे। दीपक का तो चित्र भी समाचार-पत्रों में छपा, उसके साक्षात्कार के साथ। उसमें उसने जो अपने विचार प्रगट किए, उससे लता के पिता की भी आँखें खुल गईं। लता के प्रथम श्रेणी लेकर पास होने पर तो वे खुश थे ही, अपनी पत्नी से सोना व उसकी इस पूरी मित्र-मंडली की पिछली कहानी व अभी के परीक्षा-परिणाम की बात सुनकर वे गद्गद हो उठे।

उन्होंने जब लता को बुलाकर उसकी पीठ ठोकी तो उत्साहित हो लता का भी हौसला बढ़ आया। उसने पिता से कहकर अपनी शादी की बात कम से कम दो साल के लिए रुकवा ली। नरेश से पहले संकेतों में बात हो ही गई थी कि जब तक लता अपना पूरा मन न बना ले, वह उसे जल्दी शादी के लिए मजबूर नहीं करेगा। यों इस वर्ष लता बालिग हो गई है और इस विषय में अपना निर्णय ले सकती है, पर इसका मतलब यह नहीं कि शादी लायक भी हो गई है! इन दो वर्षों में एक ओर वह नरेश को अच्छी तरह परख लेगी (नरेश ने भी कहा है कि तब तक वह अपना स्वतन्त्र बिजनेस जमाने में सफल हो सकेगा), दूसरी ओर माँ-बाबूजी को भी वो

: टाइम' व्यवसाय के रूप में भी तो इन्हें अपनाया जा सकता है। ऐसी : भी कई लाइनें हैं, जिनका प्रशिक्षण बहु-उद्देश्यीय सिद्ध हो सकता है। । करने की जरूरत हो और छोटे बच्चों के साथ 'फुल टाइम' काम रास ाए (हाँ, घर मे इसकी सुविधा-व्यवस्था हो तो छोटे बच्चों वाली ाएँ भी पूरे समय का काम आसानी से कर सकती हैं, यह तो समय की । पर निर्भर है और इस पर कि उस माग का उत्तर देने की हममें तनी सामर्थ्य है ?) तो 'पार्ट टाइम' व्यवसाय मे ऐसे प्रशिक्षणों का लाभ लिया जा सकता है। फिर भी प्रथम उद्देश्य व्यक्तित्व-विस्तार ही होना ाहिए, ऐसा मेरा निजी विचार है। जरूरी नहीं, सबका हो।"

इतना लम्बा वक्तव्य सुनकर लता को लगा, जैसे वह अपने पिछले मय में लौट गई है, जब लीना बोलती थी और वह केवल सुनती थी। ।क्तित्व-विस्तार के इन पहलुओं पर तो उसने अभी खास सोचा ही न ा। इसलिए आज फिर उसी तरह अभिभूत होती सुनती व निर्निमेष ।कती रह गई थी। इसीलिए उसे लगा, उसका व्यक्तित्व-प्रशिक्षण अभी ूरा नहीं हुआ है, अभी तो उसे लीना व लीना की मम्मी से और बहुत कुछ ीखना है। पर इस तरह अपने भीतर क्षण-भर डूबकर वह उपर आई, फिर उसने अपनी बात रखी, "लेकिन जानती हो लीना, आज मैं तुम्हें क्या ताने आई हूँ ? बाबूजी ने आगे पढ़ाई और नौकरी के दोनों प्रस्ताव मेरे सामने रखे तो मैंने आगे पढ़ने की मन की इच्छा दबाकर भी नौकरी के लिए हाँ कर दी। बाबूजी ने मेरे लिए जो नौकरी खोजी है, मुझे बुरी नहीं लगी। फिर घर मे बड़े परिवार के हालात देखकर भी मुझे नौकरी करना उचित लगा। पर अब ..."

"अब क्या दुविधा है ?"

"एक तो यह कि मैंने यह निर्णय लेकर अच्छा किया कि नहीं ? दूसरे..."

"दूसरे क्या ? खैर पहले [illegible] पर ही बात कर लें मेरी राय में तुमने वही किया, जो तुम्हें करना चाहिए था। मैंने अभी कहा था न कि हमें समय, परिस्थिति देखकर चलना चाहिए। तुम्हारे घर के हालात ऐसे नहीं कि

सुविधा न मिले तो इस तरह के कोर्स तो तुम कभी भी कर सकती हो, विवाह के बाद भी। इसलिए मन में यह दुविधा एकदम निकाल दो कि नौकरी का निर्णय लेकर तुमने कोई गलती की है या इससे तुम्हारा अन्यथा विकास रुक जाएगा। मैं तो कहूँगी, तुम भाग्यशाली हो कि स्नातक होते ही तुम्हें यह नौकरी हाथ लग गई, जो जरूरी नहीं कि स्नातकोत्तर डिग्री या किसी अन्य प्रशिक्षण के बाद भी हाथ लगती। आजकल बहुत धक्के खाने पड़ते हैं, जो तुम्हें नहीं खाने पड़े। अब तो तसल्ली हुई तुम्हारी ?"

"हाँ, लीना, सच तुम हर बार मुझे किस तरह उबार लेती हो, यह क्या मैं कभी भूल सकूँगी ? और तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि काम में रुचि लेकर उसे मेहनत से सीखूँगी और इसी सीढ़ी से आगे बढ़ने का प्रयत्न करूँगी। काम पकड़ लेने पर पूरा वेतन देने और आगे तरक्की देने का आश्वासन फर्म से मिल हो चुका है। फिर भी ।"

"फिर भी क्या ? क्या उस दूसरी दुविधा पर ही अटकी हो ? तो बोलो क्या बात है ? शायद मैं कुछ मदद कर सकूँ ?"

"मुझे एक-दो बार अपनी मम्मी से फिर मिलवा दो न आज के दफ्तरों के माहौल में से कैसे अपनी राह निकालूँ ? इस पर और अन्य कुछ

ही बूते यह स्थान प्राप्त किया। दूर जाने पर क्या मैं उसकी तरक्की का रोड़ा बनूं? नहीं, मैंने न कोई कमजोरी जाहिर की, न उससे कोई वायदा किया-लिया। जो भी उस तरह का सोचेंगे हम, उसके लौटने के बाद समय पर ही सोचेंगे।" अच्छा अब चलती हूं, कल मिलती हूं, तुमसे तुम्हारे आफिस में, शाम को।" और लीना यह जा, वह जा।

लता आंख भर उसकी निश्छल, निर्द्वन्द्व छवि को देखती रह गई—उसी हसरत से।

ऑफिस गर्ल

लता, लीना, मम्मी

"ओह, लीना ! आओ, आओ, तुम तो शाम को छुट्टी के समय आने वाली थीं न ? इस समय में कैसे आ गईं ?" लीना को अचानक आते देख लता चहकी भी, उसने आश्चर्य भी प्रगट किया।

"बस यूँ ही, इस तरफ आई थी, सोचा, घर जाकर फिर आना मुश्किल होगा, अभी ही चली चलूँ। कोई असुविधा तो नहीं इस समय ?" लीना ने बात बनाई। वास्तव में वह दिए गए समय पर नहीं, अचानक आकर ही देखना चाहती थी।

"नहीं नहीं, असुविधा कैसी ! आओ, हमारे साथ खाना खाओ। घर से चले तो देर हो गई होगी न ?"

"हाँ, कुछ देर पहले ही घर से निकली थी। खाना खाकर तो नहीं आई, पर तुम फिक्र मत करो, मैं यहाँ से सीधे घर ही जाने वाली हूँ, जाकर खा लूँगी। यहाँ तुम कितना लेकर आई होगी, अपना ही तो ?"

"हम सबके पास अपना-अपना ही है, पर सबके डिब्बों में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर भी एक व्यक्ति का खाना तो निकाला ही जा सकता है। आप अवश्य हमारा साथ दीजिए, हमें खुशी होगी।" यह लता की बगल में बैठी उसकी सह-कर्मी कुसुम थी।

इस ओर के इस ग्रुप में बैठी कुल पाँच लड़कियाँ थीं। सबने आग्रह किया तो थोड़ी हिचक के बाद लीना खाने में शामिल हो गई। उसे यह 'आफर' अच्छी लगी।

पर लीना का ध्यान खाने की विविध सब्जियों, चीजों या अपने इस ग्रुप की लड़कियों की ओर ही न था। खाने में साथ देती हुई भी वह नजर

उठाकर चारों ओर देख रही थी। उसने पहले इस ग्रुप की तीन लड़कियों की वेशभूषा को गौर से देखा, फिर देखा, सामने थोड़ी दूर एक मेज के चारों ओर ऑफिस के कुछ युवा कर्मचारी एक अलग ग्रुप में खाना खा रहे थे। वे लोग बीच-बीच में नजर उठाकर इस ग्रुप पर डाल लेते थे और हर बार जब उनमें से किसी की नजर इस ओर से घूमकर वापस आती थी, वहाँ एक कहकहे, एक कानाफूसी, एक 'रिमार्क' के साथ कुछ हलचल मच जाती थी। इधर लड़कियाँ यों तो अपने-अपने डिब्बे पर झुकी खाने में मग्न दिखाई देती थीं, पर बीच-बीच में वे कनखियों से उधर देख लेती थीं। देखने के बाद किसी का सिर नीचे झुक जाता, कोई मुँह दबाकर जैसे दाँत पीस लेती, किसी के मुँह से अनायास ही कोई 'रिमार्क' उछलकर बाहर आ जाता। फिर इन सह-कर्मी लड़कियों के बीच कोई किस्सा चल पड़ता।

लीना इस सारी स्थिति का चुपचाप नोटिस ले रही थी और लता उसकी मंशा समझकर मन-ही-मन में शर्मिंदा-सी हो रही थी। लीना की उपस्थिति में वह बात को टालना चाहती, किन्तु जिन लड़कियों को इस तरह की आदत लगी हुई थी, वे कहाँ मानने वाली थीं।

लंच समाप्त हुआ और लीना लता से यह कहती हुई कि "अब मेरे शाम को आने का तो सवाल नहीं, तुम यहाँ से सीधे घर आ जाना। मम्मी को मैंने तुम्हारे आने की बात बोल दी थी, वह राह देखेंगी। तुम घर पर तो कह आई होगी न ?" उठकर चलने को उद्यत हुई।

"हाँ, आज तुम्हारे साथ ही शाम को जाने का तय था न, तो मैं घर पर कहकर ही आई थी कि लेट आऊँगी। पर तुम थोड़ी देर और बैठोगी नहीं ?" लता ने कहा और सहज होने का प्रयत्न किया।

"नहीं, मैं अब चलूँगी। शाम को तो मिलेंगे ही !" और लता तेजी से बाहर निकल आई।

उसने घड़ी देखी, अभी लंच का समय समाप्त होने में दस मिनट बाकी थे। वह पास की कैंटीन में कुछ लड़के-लड़कियों का एक और छोटा ग्रुप देखकर कैंटीन के भीतर चली गई और एक खाली मेज पर बैठकर उसने एक चाय का आर्डर दे दिया। यूँ ही बैठकर देखने के लिए। उसे आभास

बात चलाई तो उसने उतना ही उत्तर दिया, फिर चुप लगा गई। लीना इस बीच कहीं खिसक ली थी। लता के मौन का यह भी एक कारण रहा होगा।

पहल मम्मी को ही करनी पड़ी, "तुम कुछ जानना-समझना चाह रही थी न ? कहो क्या कहना चाहती हो ? दफ्तर में कोई खास परेशानी है क्या ?"

"खास तो कुछ नहीं मम्मी, पर मैं अभी तक वहाँ सहज नहीं हो पाई हूँ। इसलिए जानना चाहती हूँ कि जैसा आम माहौल है आजकल हर जगह, उसमें एक सहज स्थिति लाने के लिए मुझे क्या करना चाहिए ?" लता ने कुछ संकोच के साथ अपनी बात रखी।

"कुछ विशेष नहीं। तुम स्वयं सहज रह सकोगी तो आसपास सब सहज ही लगेगा। यह तो ठीक है कि आफिस में उस आजादी के साथ नहीं रहा जा सकता, जैसे कि तुम लोग अपनी अन्तरंग मित्र-मण्डली में रहते रहे। फिर भी एक परिवार का-सा सहज वातावरण वहाँ बनाया जा सकता है। शंका-कुशंका से बचकर अपना सम्मानजनक स्थान भी पाया जा सकता है।"

"मैं समझती हूँ मम्मी, पर फिलहाल हरचन्द कोशिश में मुझे वैसी कामयाबी नहीं मिल पा रही है, जैसी मिलनी चाहिए।"

"इसलिए कि तुम अभी उस दफ्तर में नई हो और चाहकर भी उन सहकर्मी युवक-युवतियों का साथ नहीं छोड़ पा रही हो, जिन्हें तुम पसन्द नहीं करतीं। पर घबराओ नहीं, तुम्हारे जैसी लड़की शीघ्र ही अपनी राह आप निकाल लेगी। जब तुम्हारे निजी मित्रों का एक छोटा ग्रुप बन जाएगा। विशेष रूप से जब दफ्तर का काम पूरी तरह तुम्हारी पकड़ में आ जाएगा।"

"सच मम्मी, आपने ठीक समझा। दरअसल अभी वहाँ का काम मुझे [illegible] और आसपास हर किसी से कुछ न कुछ समझना

[illegible] सम्बन्ध ठीक बनाकर चलना पड़ता है, यही न ?"
[illegible] हें नापसन्द करने पर भी मैं उन्हें एकदम झटक

ो बातो, शिकायतों के लिए अधिकतर ये लडकियाँ स्वय ही
ोती हैं।…पर मैं तो ऐसी स्थितियों में नई लडकियो के लिए
ाधान हो, इस बारे में आपकी राय जानना चाहती हूँ। कृपया
छ प्रकाश डालेंगी ?"

नहीं। पर एक बात बताओ, कालेज ▮ प्रवेश की तरह यहाँ
सी स्थिति का सामना तो नहीं करना पड़ा न ?"

। बल्कि हर सहकर्मी किसी-न-किसी रूप में सहायता के लिए
। आज भी है। बस…"

यह सोचना और निर्णय लेना है, कितनी सहायता ली जाए,
जाए या ली जाए तो उसका बदला कैसे, किस रूप में चुकाया
ी न ? दूसरे शब्दों में पुरुष सहकर्मियों से कितना मेलजोल
ए!"

शायद यही दुविधा होती है।"

हारी जैसी सुलझी हुई लड़की के लिए यह दुविधा नहीं होनी
फिर भी यदि है तो मैं कहूँगी कि प्रारम्भ में यह स्वाभाविक है।
अपना सब काम अपने-आप करने योग्य हो जाने पर यह नहीं
फिर भी एक बात तुम अच्छी तरह समझ लो कि दफ्तरों की भी
क राजनीति होती है। तुम्हें उसे समझकर अपनी राह निकालनी
शिकार नहीं होना है। यह भी कि कुछ समय बाद अपने काम के
आत्मनिर्भर हो जाने पर भी तुम्हें किसी-न-किसी रूप में अपने
ों की सहायता की जरूरत रहेगी ही। उनमें से निकट सहयोगियों
ुप बन जाने पर भी तुम्हें दूसरों की उपेक्षा इसी हद तक करनी
सी को तुम्हारा व्यवहार अपमानजनक न लगे। जैसे परिवार के
दस्यों में मतभेद रखते हुए भी हम रिश्ते निभाने के लिए बाध्य
उसी तरह एक आफिस के सभी सहकर्मी भी एक परिवार के
ी होते हैं, उन्हें ऐसे ही मानकर चलना चाहिए। स्त्री-पुरुष के
ज सहकर्मी या एक परिवार के सदस्य की-सी भावना तुम जैसी
ों को ही विकसित करनी है कि वर्तमान माहौल में जो खामियाँ
दूर कर दूसरों के लिए मिसाल कायम हो, अपनी राह आसान

है, न उन्हें सिर चढ़ाना है, न उनकी खुले रूप में उपेक्षा ही करनी है। बस काम की ही बात और ऊपरी सम्बन्ध रखने हैं उनसे। दूसरे, किसी भी सहकर्मी के सामने अपने घर की स्थितियों का न तो रोना रोना है, न बढ़-चढ़कर बखान ही करना है। अपने घर की हर बात या अपने मन की हर कमजोरी तो निकट समझे जाने वाले मित्र के सामने भी जाहिर नहीं करनी चाहिए—न जाने कल को किसी कारण मैत्री में अन्तर आने पर वह इसका किस रूप में उपयोग करे? तीसरे, किसी मित्र या सहकर्मी का एक सीमा से बढ़कर अहसान नहीं लेना है, न अपना काम उसपर डालना है। इस मामले में मिल-बाँट या आदान-प्रदान की नीति ही ठीक रहती है। चौथे, अफसर की इज्जत करो, काम सम्बन्धी हर आदेश मानो, पर उसका अनुचित आदेश या प्रस्ताव आए तो विनम्रता से, दृढ़ता से इन्कार कर दो। आगे के लिए वह स्वयं ही समझ जाएगा। अपने अफसरों को अपने काम के बजाए अपने नाज-नखरों से प्रसन्न करने वाली लड़कियाँ ही अपने कैरियर और सुरक्षा को खतरे में डालती हैं। कभी मौका देखकर मजबूरी का तर्क देने वाली लड़कियों को भी यह तथ्य बताया जा सकता है कि अधिकारी कितना ही चरित्रभ्रष्ट क्यों न हो, अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा व अपने आफिस में अपनी प्रतिष्ठा के प्रति जागरूक होता है, इसलिए किसी लड़की की कमजोरी या इच्छा जानकर ही वह उस पर हावी हो सकता है, अन्यथा नहीं। फिर भी मजबूरी जैसी स्थिति आ ही जाए कभी, तो अपनी अस्मिता को नौकरी पर न्योछावर नहीं होने देना चाहिए। नौकरी तो और भी मिल सकती है, खोई इज्जत या अस्मिता नहीं।

"यह भी ध्यान लो कि लड़की कितनी भी योग्य हो, उसे अपने बड़प्पन का रोब अपने पुरुष साथियों पर इस कदर नहीं डालना चाहिए कि वे हीन भाव अनुभव करने लगें। कई बार केवल इसी कारण पुरुष साथी लड़की को नीचा दिखाने पर तुल जाते हैं और अकारण ही उसे उनके षड्यन्त्र का शिकार हो जाना पड़ता है। याद रखो, योग्यता, शालीनता और सुखद व्यक्तित्व अपने आपमें एक सुखद प्रभाव है, जिसे बखान करने की जरूरत नहीं होती। वह तो स्वयं ही विकिरण का काम करता है। एक जरूरी बात यह भी कि किसी 'कुलीग' या सहकर्मी के साथ कहीं आना-जाना पड़े

यह कोई बीमारी नहीं है

लता और मम्मी

पिछली बार की तरह इस बार भी लता लीना के घर आई तो चुपचाप बैठ गई। लीना घर नहीं थी कि पूर्वपीठिका तैयार करती। वह रिश्तेदारी में एक समारोह में भाग लेने गई हुई थी। लता को संकोच हुआ, मम्मी से बात कैसे शुरू करे? विषय ही ऐसा था कि एकाएक उसकी जुबान खुल नहीं पाई। पर मम्मी उसे ऐसे कैसे बैठने देतीं। उन्हें हर मामले को सँभालना आता है। बोलीं, "लीना तो घर नहीं है, लता, आज चाय तुम्हें ही बनाकर पिलानी पड़ेगी। जाओ, पहले रसोई में जाकर दो कप चाय बनाकर लाओ—एक अपने लिए, एक मेरे लिए। फिर इतमीनान से बैठकर बात करेंगे। चाय के बिना तो बातचीत का मूड ही नहीं बनता। यों भी मैंने शाम की चाय नहीं पी है, सोचा तुम आ ही रही हो, साथ-साथ पियेंगे। आज लीना जो नहीं थी, साथ देने के लिए।"

लता की जान में जान आई। वह उठकर रसोईघर की ओर चल दी। चाय बनाते भी सोच रही थी, 'कैसे पूछूं?' पर रोज की तरह मम्मी ने आज भी उसे बातचीत का मन बनाने के लिए मौका दे दिया था। उनकी इन्हीं बातों की तो कायल है वह। सच ही यह अन्तराल उसके काम आया। चाय लेकर जब तक वह बाहर आई, चर्चा के लिए लगभग तैयार हो चुकी थी। दो-चार चुस्कियाँ लेने के बाद बात उसने स्वयं ही चलाई, "मम्मी, पता नहीं क्यों, हर महीने मेरे चार-पाँच दिन काफी तनाव से गुजरते हैं—दो दिन पहले से ही यह तनाव शुरू हो जाता है, जो बाद में भी दो-तीन दिन चलता है?"

"तुम्हारा मतलब मासिकधर्म के दिनों से है न?"

"वह कैसे मम्मी ?" लता की उत्सुकता की सीमा न रही।

"ऐसे कि इसी किशोरावस्था मे लड़को की स्थिति कितनी हास्यास्पद-सी हो जाती है। चेहरे पर उगी-बिखरी झाड़ियो-सी ऊबड़खाबड़ दाढ़ी-मूंछ, जिस पर डर से अभी शेव भी नही हो पाती। और फटे बांस-सा भर्राया-सा गला। शरीर का असतुलित विकास, जिसे लेकर वे किसी से ठीक से बातें भी नही कर पाते। बाहर वालो के सामने और लड़कियो के सामने क्या, अपने घर वालो तक के सामने जाने से कतराने लगते हैं। अकारण झेपने लगते हैं। यह ठीक है कि विकास पूरा हो जाने पर उनके साथ भी सब ठीक-ठाक हो जाता है। पर बाद मे भी रोज-रोज हजामत बनाने की जहमत क्या उन्हे नही उठानी पड़ती ? उनके मुकाबले तुम लोगो के जिम्मे तो यह तीन-चार दिन की जहमत ही आई है न ? अब बोलो, प्रकृति का तुम्हारे साथ अन्याय है कि पक्षपात ?"

लता हँसने लगी। मम्मी का यह तर्क सचमुच उसे जोरदार लगा। पर अभी उसकी शकाएँ मिटी न थी। "लेकिन ...?"

"लेकिन हम इस तरह भी क्यो सोचें ? यही क्यों न स्वीकारें कि प्रकृति का सब काम अपनी जगह ठीक-ठाक है और स्त्री, पुरुष, सबकी भूमिका अपनी-अपनी जगह महत्वपूर्ण है। किशोरावस्था मे आकर लड़को को कभी-कभी वीर्यपात होने लगना और लड़कियो मे छाती का उभार व मासिक धर्म के लक्षण उनके स्त्री-पुरुष बनने की तैयारी ही तो है। यह तो हमारे यहाँ घरो मे व घरो से बाहर किन्हीं सस्थाओ में यौनशिक्षा का अभाव ही है कि सही जानकारी के अभाव मे लड़के-लड़कियाँ इन प्राकृतिक लक्षणो को बीमारी समझ लेते हैं और बिना कारण मन-ही-मन एक अनजाने भय, चिन्ता, घबराहट, हीनभावना या अपराधचेतना से घिरे रहते हैं। इस उम्र मे यानी किशोरावस्था से युवावस्था के सन्धिकाल मे यूँ भी जब शरीर का तेजी से विकास होता है, भीतरी हारमोनल ग्रन्थियों का स्राव बढ़ जाने से मानसिक उथल-पुथल कम नही होती। उस पर जब लड़के-लड़कियाँ सही जानकारी के अभाव मे ऐसे अजाने भय भी पाल लेते हैं तो ग्रन्थियो के सहज कार्य मे रुकावट पड़ने लगती है। उनके गड़बड़ाने से सहज विकास भी असतुलित होने लगता है।"

मानसिक कारणों से भी) मासिक प्रारम्भ होने की अवधि समान नहीं रह पाती। फिर भी ११ से १४ वर्ष तक की सामान्य अवधि प्राय १०-१७ तक ही घट-बढ़ सकती है, इससे अधिक नहीं। ठंडे देशों-प्रदेशों में अवधि कुछ ज्यादा होती है, गरम प्रदेशों में कुछ कम। फिर अधिक पौष्टिक खुराक व गरम पदार्थ लेने वाली लड़कियों को मासिक जल्दी शुरू हो सकता है क्योंकि उनको बढ़त जल्दी होती है। पर यह नियम अनिवार्य नहीं। प्राकृतिक रूप से ही अनेक मामलों में यह विविधता पाई जाती है। सामान्य मामले में एक से दूसरे मासिक में २८ दिन का अन्तर रहना चाहिए। पर यहां भी यह अन्तर २४ से ३० दिन तक हो और हर बार यही रहे तो सामान्य अवधि ही मानी जाती है। पर इनसे कम-अधिक अन्तर सामान्य नहीं, किसी खराबी का परिचायक होगा, जिसके लिए जांच जरूरी है। इसी तरह १७ की आयु तक भी मासिक आरम्भ न हो तो लेडी डाक्टर से परामर्श करना चाहिए।

"एक बात और, किशोरावस्था में मासिक प्रारम्भ होते समय और प्रौढ़ावस्था में मासिक बन्द होते समय एक-दो साल तक इसकी अवधि जरूरी नहीं कि नियमित हो। अत: शुरू में कुछ समय छोड़कर भी हो तो घबराना नहीं चाहिए। यह अस्थाई अनियमितता कुछ समय बाद स्वयं ही ठीक हो जाएगी। यहां भी यदि इस अनियमितता को लेकर नासमझीवश चिन्ता पाली जाएगी तो अनियमितता की अवधि बढ़ सकती है बल्कि कई मामलों में स्थाई समस्या भी बन सकती है।"

"एक बात और पूछूं मम्मी, यह क्या है कि परीक्षा के दिनों अक्सर लड़कियां मानती हैं कि मासिक न आए और वह बेवक्त भी आ जाता है। इसी तरह मैंने देखा-सुना है कि विवाह के समय भी लड़कियों के साथ अक्सर यह बेवक्त का मजाक प्रकृति कर देती है?"

"प्रकृति नहीं करती यह। आप लोग अपने मानसिक भय, चिन्ता, तनाव से प्रकृति के काम को गड़बड़ा देती हो। सहज रहनेवाली लड़कियों के साथ ऐसा नहीं होता, अध्ययन करके देख लेना। हां, मैंने सुना है, आजकल कुछ लड़कियां परीक्षा के दिनों इसे रोकने के लिए लेडी डाक्टर से दवा, इन्जेक्शन देने का अनुरोध करती हैं। कई डाक्टर्स भी पैसों के

गरम पानी से नहाएँ व चाय आदि गरम पेय लें कि स्राव बढ़ जाए। पर अधिक स्राव में सरदी के दिनों भी अधिक गरम पानी से नहाना ठीक नहीं। गरमी में तो ठंडे पानी का ही उपयोग करें कि स्राव बढ़े नहीं।—अब तुम्हें यह बताने की तो जरूरत नहीं कि मासिक धर्म क्यों होता है? व इसका नारी जीवन में क्या कार्य या महत्त्व है? गृह विज्ञान और शरीर विज्ञान में यह सब पढ़ाया ही जाता है। मुख्य बात फिर यही समझने की है कि इस अवधि को सहजता से स्वीकारें और खानपान, सफाई-स्वच्छता पर, काम-आराम के संतुलन पर ध्यान दें। मनोरंजक रुचियाँ अपनाकर इस समय को हँसी-खुशी गुजारें कि यह स्वीकारणीय 'रुटीन' बन जाए और कोई समस्या न खड़ी हो। फिर भी कोई समस्या लगे या अनियमितता दिखाई दे तो उसे शर्म के मारे छिपाए न रखें, समय पर निःसंकोच लेडी डाक्टर से मिलकर जाँच व चिकित्सा कराएँ कि आगे चलकर कोई कठिनाई न उठानी पड़े—बस इतना ही।"

"क्या हल्के व्यायाम व श्रम के कार्य कर सकते हैं?"

"अवश्य। बल्कि लक्ष्मीबाई शारीरिक शिक्षण महाविद्यालय, ग्वालियर में की गई एक शोध के अनुसार तो मासिक धर्म की तकलीफों से छुटकारा पाने के लिए महिलाओं को नियमित व्यायाम की आदत डालनी चाहिए। उन दिनों भी दैनिक जरूरत के सभी हल्के काम किए जा सकते हैं। केवल भारी श्रम और दौड़ने-कूदने के व्यायाम से ही बचने की जरूरत है। और उससे भी अधिक जरूरत है, उन दिनों सहज मनःस्थिति में रहने की, क्योंकि अधिकतर गड़बड़ियाँ व अनियमितताएँ भय-तनावजनित ही होती हैं। यह बात मैं तीसरी बार दुहरा रही हूँ, इसीलिए कि तुम्हें स्वयं भी ठीक होना है और अपनी सहेलियों को भी ठीक होने में सहयोग देना है—समझ गईं न अब तो?"

"हाँ मम्मी, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। पता नहीं, मुझे पहले क्यों यह अक्ल नहीं आई कि आपसे पूछ लेती। बेकार ही झेलती रही। बस संकोच ही आड़े आता रहा।"

"इस मामले में अक्सर संकोच के कारण ही लड़कियाँ कष्ट पाती रहती हैं। उनका भी दोष नहीं। कुछ अपवाद छोड़, अक्सर घर से उन्हें

आरम्भ में उसके लिए रक्त आवश्यक है जिसको वह देती है। यह ठीक नहीं। बिना किसी बहुत गम्भीर कारण के, केवल चोंचलों व सुविधा के लिए प्रकृति के काम में दखल देना अथवा अनियमितताओं को आमंत्रित करना है।"

"अच्छा मम्मी, हर माह इतना रक्त निकल जाने से कमजोरी नहीं आती? क्या इस कमी-पूर्ति के लिए अतिरिक्त खुराक लेने या अन्य उपाय करने की जरूरत होती है? मैं तो ऐसा नहीं समझती, पर कई लड़कियों को मैंने ऐसा कहते सुना है।"

'यह भी लड़कियों की अकारण चिन्ता का एक कारण है। यह धारणा एकदम भ्रामक है कि इससे कमजोरी आती है। यह तो एक तरह का गंदा खून होता है, जिसका हर महीने निष्कासन जरूरी है। गर्भ के समय जब शिशु के पोषण के लिए इसकी जरूरत होती है, प्रकृति स्वत ही इसका शोधन करके इसे भीतर रोक लेती है। हां, जरूरत से ज्यादा स्राव हो तो अवश्य कमजोरी आ सकती है। तब तो किसी भी अन्य असामान्यता की तरह इसका इलाज करवाना होगा। तब भी अतिरिक्त पौष्टिकता वाली खुराक लेने की बात भ्रामक है, क्योंकि मासिक की सहज स्वस्थ निष्पत्ति के लिए तो उन दिनों हल्का पौष्टिक भोजन लेने और सफाई-स्वच्छता का विशेष ध्यान रखने की ही आवश्यकता होती है। दौड़ने से बचना व भारी व्यायाम या श्रम के कार्य न करना तो ठीक, पर अधिक आराम करने या स्नान न करने से लाभ के बजाए हानि ही हो सकती है।"

"अन्य हिदायतें कि स्वास्थ्य ठीक रहे व मासिक भी?"

"मौसम अनुसार हल्के गरम या ठंडे पानी से स्नान जरूर लें व स्वच्छता के लिए साफ विसंक्रमित कपड़ा या 'सैनेटरी पैड' इस्तेमाल करें कि बीमारियों से बचाव रहे। पानी जाने व खुजली होने के रोग प्राय इसी कारण लगते हैं कि संक्रमण (इन्फेक्शन) से बचने के लिए सफाई-स्वच्छता का ठीक ध्यान नहीं रखा गया। शुरू में समझ न हो तो घर की किसी समझदार महिला से जानकारी लेनी चाहिए या नि.संकोच लेडी डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए—कोई समस्या होने पर तो अवश्य ही कि बाद में अधिक कष्ट न भोगना पड़े। हां, स्राव बहुत कम हो तो जरा अधिक

गरम पानी से नहाएँ व चाय आदि गरम पेय लें कि स्राव बढ़ जाए। पर अधिक स्राव मे सरदी के दिनो भी अधिक गरम पानी से नहाना ठीक नही। गरमी मे तो ठडे पानी का ही उपयोग करें कि स्राव बढ़े नही।···अब तुम्हें यह बताने की तो जरूरत नही कि मासिक धर्म क्यो होता है ? व इसका नारी जीवन मे क्या कार्य या महत्त्व है ? गृह विज्ञान और शरीर विज्ञान मे यह सब पढाया ही जाता है। मुख्य बात फिर वही समझने की है कि इस अवधि को सहजता से स्वीकारें और खानपान, सफाई-स्वच्छता पर, काम-आराम के सतुलन पर ध्यान दें। मनोरजक हॉबियाँ अपनाकर इस समय को हँसी-खुशी गुजारें कि यह स्वीकारयोग्य 'रुटीन' बन जाए और कोई समस्या न खडी हो। फिर भी कोई समस्या लगे या अनियमितता दिखाई दे तो उसे शर्म के मारे छिपाए न रखें, समय पर नि:सकोच लेडी डाक्टर से मिलकर जाँच व चिकित्सा कराएँ कि आगे चलकर कोई कठिनाई न उठानी पडे—बस इतना ही।"

"क्या हल्के व्यायाम व श्रम के कार्य कर सकते हैं ?"

"अवश्य। बल्कि लक्ष्मीबाई शारीरिक शिक्षण महाविद्यालय, ग्वालियर मे की गई एक शोध के अनुसार तो मासिक धर्म की तकलीफो से छुटकारा पाने के लिए महिलाओ को नियमित व्यायाम की आदत डालनी चाहिए। उन दिनो भी दैनिक जरूरत के सभी हल्के काम किए जा सकते हैं। केवल भारी श्रम और दौडने-कूदने के व्यायाम से ही बचने की जरूरत है। और उससे भी अधिक जरूरत है, उन दिनो सहज मन-स्थिति मे रहने की, क्योकि अधिकतर गडबडियाँ व अनियमितताएँ भय-तनावजनित ही होती हैं। यह बात मैं तीसरी बार दुहरा रही हूँ, इसीलिए कि तुम्हें स्वय भी ठीक होना है और अपनी सहेलियो को भी ठीक होने मे सहयोग देना है—समझ गई न अब तो ?"

"हाँ मम्मी, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। पता नहीं, मुझे पहले क्यों यह अक्ल नहीं आई कि आपसे पूछ लेती। बेकार ही झेलती रही। बस सकोच ही आडे आता रहा।"

"इस मामले में अक्सर सकोच के कारण ही लडकियाँ कष्ट पाती रहती हैं। उनका भी दोष नही। कुछ अपवाद छोड, अक्सर घर से उन्हें

लोगों को कुछ समझाइए न ! आप कहें तो मैं उस लड़की श्यामा को साथ लेती आऊँ ?"

"ले आना। मैं चाहूँगी कि लीना भी साथ रहे तो बेहतर रहेगा। उसे अकेले तो मेरी बात को गम्भीरता से लेना नहीं है। इतना अति-बल आत्मविश्वास भी ठीक नहीं, कभी धोखा खा सकती है। तुम रहोगी तो वह भी बैठकर कुछ सुन लेगी। इसलिए अच्छा हो, कल शाम को ही आ जाओ। क्यों, कुछ असुविधा तो नहीं होगी ?"

"नहीं मम्मी, मैं घर पर कहकर आ जाऊँगी। श्यामा कल न आ सकी तो अकेली ही। फिर लीना से भी तो मिलना है। वह परसों जा रही है।"

"तो ठीक है। अब तुम घर जाओ, माँ राह देख रही होगी। कल शाम को मिलेंगे ही।" और मम्मी ने अपनी चिरपरिचित शैली में उसके गाल थपथपाते हुए प्यार के साथ उसे विदा किया।

था, लेकिन न जाने क्यों, इसकी हिम्मत ही नहीं जुट रही। इसीलिए तो पकड़कर आपके पास लायी हूँ। अब आप ही इसे समझाइये।" लता ने पासा फिर मम्मी की तरफ फेंक दिया।

मम्मी हँस दी। फिर उन्होंने लता से चुटकी ली, "और तुम्हें अपने लिए कुछ नहीं जानना-समझना है ?"

"क्यों नहीं ? क्या पता, कब श्यामा की तरह मेरा भी तबादला बाहर कर दिया जाये ? तब नौकरी या घर की सुरक्षा में से एक चीज चुननी ही होगी न !"

"हाँ, शिक्षा, नौकरी, व्यवसाय, सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ने के साथ बड़ी संख्या में लड़कियों को आज अपना घर छोड़कर बाहर जाना पड़ता है। छोटे शहरों और कस्बों से लड़कियाँ उच्च शिक्षा या नौकरी की तलाश में बड़े शहरों में आती हैं। महानगरों के कालिजों में भी प्रवेश की समस्या दिनोंदिन कठिन होते जाने से अनेक लड़कियों को अध्ययन के लिए भी दूसरे नगरों में जाना पड़ता है। पर काम कोई भी हो, शिक्षा, नौकरी या निजी व्यवसाय, अविवाहित युवतियों के लिए अकेले रहने की समस्या अभी हमारे समाज में कठिन ही है। रूढ़िवादी सामाजिक परम्पराएँ पग-पग पर उनके मार्ग में बाधा बनकर आ खड़ी होती हैं ।"

मम्मी की बात को बीच में काटकर सीमा बोल पड़ी, "हाँ, सबसे बड़ी समस्या है—किसी लड़की को अकेले रहते देखकर आसपास के लोगों में होने वाली शंकाएँ और चर्चाएँ। अच्छी-भली लड़की को भी चारों ओर से घेरने वाली निगाहें अकारण ही चरित्र की ऐसी सज्ञा से विभूषित करने लगती हैं कि उन शकित निगाहों को पढ़ते-पढ़ते, तग आकर कभी-कभी वह सचमुच ही उस राह पर चलने को विवश हो जाती है।"

"विवशता की बात तो मैं नहीं मानती, सिवाय अचानक घट जाने वाली किसी दुर्घटना के। पर जब तक हमारे समाज के दृष्टिकोण में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आ जाता, हर लड़की को फूँक-फूँककर कदम रखने की जरूरत तो है ही—है न मम्मी ?" कहकर लता ने मम्मी की ओर ताका।

मम्मी ने बात का सूत्र फिर सँभाल लिया, "सच तो यह है कि यह

छोटी-छोटी बातों को लेकर कुढ़ने से दोनों पक्षों को ही हानि उठानी पड़ती है।"

"और 'बोर्डिंग हाउस' में रहने पर ?" लीना ने प्रश्न उछाला।

"बोर्डिंग हाउस में रहने पर समान आयु और रुचि की लड़की या लड़कियों को 'रूममेट' बनायें, फिर यह जरूरी नहीं कि वे आपकी अंतरंग सहेलियाँ हों। साथ रहने के लिए सामान्य नियमों के पालन और समान शिष्टाचार के निभाव का ध्यान तो रखना ही होगा, यह भी देखना होगा कि दूसरों को कम से कम असुविधा हो। परस्पर मिल-बाँट के रहें और दु:ख-सुख में एक-दूसरे के काम आएँ, तो वक्त अच्छा कटता है और छोटी-मोटी समस्याओं का समाधान भी अपने स्तर पर ही निकाला जा सकता है।"

"और कालिज-होस्टल में स्थान न मिले तो ?" यह लता थी।

"तो किसी मान्य महिला-संस्था के सामूहिक आवास-गृह में जगह खोजी जा सकती है या किसी सम्भ्रान्त परिवार में 'पेइंग गेस्ट' के रूप में रहने-खाने की व्यवस्था करायी जा सकती है। कामकाजी युवतियों को तो अवश्य ही उनके लिए बने कामकाजी महिला होस्टलों में रहना चाहिए या अच्छे परिवारों में 'पेइंग गेस्ट' बनकर। जब इस तरह की कोई भी व्यवस्था न हो पाये तभी अलग घर या कमरा (जैसी भी सुविधा हो) लेने के बारे में सोचा जाना चाहिए। यहाँ यह बात याद रखनी है कि अकेली लड़की को, जब तक वह किसी ऊँचे पद पर नौकरी न करती हो, कोई किराये पर कमरा या घर देने के लिए प्राय तैयार नहीं होता। हो तो भी अलग कमरा लेकर अकेले रहना ठीक नहीं होगा। इसके बजाय, तीन-चार लड़कियाँ (छात्राएँ या कामकाजी) मिलकर कोई छोटा घर किराये पर ले लें, वह भी किसी अच्छे परिवार के बीच, उस घर का एक हिस्सा या ऊपरी मंजिल पर बरसाती सैट अधिक उपयुक्त रहेगा कि स्वतन्त्रता के साथ सुरक्षा भी मिल सके।"

"तब क्या चर्चाएँ नहीं होंगी ?" लीना ने शंका उठायी।

"अकेली लड़की के बजाय दो-तीन लड़कियों के मिलकर रहने में चर्चाओं का कम अवसर है। विशेष रूप से, यदि वे सार्वजनिक मर्यादा का

ध्यान रखकर, पारिवारिक मर्यादाएं निभाकर और आत्मीय व्यवहार से दूसरों को अपना बनाकर। अब अस्मिता की बात पर तो, मेरे ख्याल में, फिर से लम्बी चर्चा की जरूरत नहीं। हम इस पर पहले काफी चर्चाएं कर चुके हैं। लेकिन याद रहे, यही वह समय है, जब किसी लड़की के जीवन में परीक्षा के क्षण उपस्थित होते हैं। पुरुष-मित्रों का सहज सग-साथ जरूरी है, लेकिन अकेले घर में उन्हें वक्त-बेवक्त आमन्त्रित करना, उनके साथ अकेले बाहर जाने के आमन्त्रण स्वीकार करना, किसी से कोई नशीली चीज—मदिरा आदि स्वीकार करना आज के युग में खतरे से खाली नहीं। कुछ सतर्कता, कुछ सावधानी बरतकर चलना ही ठीक होगा। लेकिन सावधानियां बरतने का मतलब यह भी नहीं कि आप लोग पुरुषों से अलग-थलग सिकुड़ी-सिमटी रहो या लड़ाकू, मुंहफट होकर अपने स्त्रीत्व के आकर्षण को ही खो दो। इस तरह तो अकेलेपन की घुटन बढ़ेगी और स्वस्थ सामाजिक, मानसिक विकास भी नहीं होगा। पर अमर्यादित व्यवहार करके या बराबरी के जोश में पुरुषों से अनावश्यक मेलजोल बढ़ाकर आप अपने चरित्र की रक्षा भले ही कर ले जायें, अवांछित चर्चाओं से नहीं बच सकेंगी। पुरुष ऐसी लड़कियों का साथ केवल मन-बहलाव के लिए ही चाहते हैं, न ऐसी लड़कियों से विवाह करना पसन्द करते हैं, न मन से उनका सम्मान ही कर पाते हैं। बस इस पुरुष-मनोविज्ञान को ही समझने की जरूरत है—इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है।"

इसके बाद लता, लीना मिलकर चाय का प्रबन्ध करती हैं और चाय-पान के बाद मम्मी से शुभ-कामनाएं लेकर लता और श्यामा विदा लेती हैं।

अपनी रक्षा आप

लता और मम्मी

सीना ट्रेनिंग के लिए बाहर चली गई थी। यों वह घर में अधिक नहीं रहती थी, पर एक सप्ताह से ज्यादा शहर से बाहर रहने का उसका यह पहला ही अवसर था। मम्मी का फुरसत का समय अक्सर उसी के साथ कटता था। उनके बीच माँ और किशोरी बेटी जैसा, आम घरों-सा, दूरी का रिश्ता था ही नहीं। सीना तो अन्तरंग सहेली की तरह माँ से हर बात कर लेती थी। मम्मी ने भी उसे इतना निकट रखा कि संकोच या दुराव के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ी। सुघड़ व्यक्तित्व और संतुलित मन-मस्तिष्क वाली मम्मी ने बचपन से ही सीना को इस तरह ढाला, सँवारा कि सीना का ही भविष्य निश्चित निर्विघ्न नहीं हो गया, उसके सम्पर्क में आने वाले उसके मित्रों, सहेलियों को भी इसका भरपूर लाभ मिला।

लता आज जो भी है, इसी वातावरण और प्रशिक्षण की देन है। पर इसके लिए लता को मम्मी के अहसान तले कभी दबना नहीं पड़ा, यह मम्मी के सहयोग और प्रशिक्षण-शैली की अतिरिक्त देन है। इसलिए लता को मम्मी पर गर्व है, उनके निकट रहकर अपने पर गर्व है और मम्मी को लता को लेकर यह सन्तोष है कि उन्हें एक उपेक्षित किशोरी का भविष्य सँवारने का अवसर मिला और अपने इस कार्य में वह सफल भी रहीं। इस निकटता का ही सु-फल है कि लता जब चाहे अपनी किसी मानसिक उलझन या समस्या को लेकर मम्मी के पास आ जाए और मम्मी उसकी सम्भव सहायता कर अपने कृत्य की सार्थकता अनुभव करें।

इस तरह देखा जाए तो संरक्षक बड़ों और संरक्षित छोटों के बीच का यह आदान-प्रदान दोनों ही पक्षों के लिए समान लाभकारी सिद्ध होता

है। पर कितनी माताएँ हैं इस तरह की सोच रखने वाली ? इस कदर सहज ढंग से अपनी किशोरी लड़कियों के प्रति जिम्मेदारी निभाने वाली ? लड़की की सहेलियों के साथ यों अपनत्व-भरे ढंग से पेश आने वाली ?

अपने आफिस से निकलकर लीना के घर की ओर आते समय लता यही सब सोचती आ रही थी। उधर मम्मी भी लीना के जाने के बाद, उसके प्रति आश्वस्त रहते हुए भी, आज कुछ उदास बैठी थी। ऐसे में लता का आगमन आज उन्हें कुछ विशेष भाया। यों जवान लड़की के पहली बार घर से बाहर रहने पर एक माँ की चिन्ता स्वाभाविक है, पर वह उदास हैं, चिन्तित नहीं, लता को यह आभास देना जरूरी था, अन्यथा उनकी कमजोरी जाहिर होती। सो लता को आते देख मम्मी ने तुरन्त उठ, बड़ी गर्मजोशी से उसे लपक लिया, "आओ बेटी आओ, मैं तुम्हारा इन्तजार ही कर रही थी। आज तो "

"मैं जानती हूँ मम्मी, आज लीना नहीं है न यहाँ, आपने अभी तक चाय भी नहीं पी होगी। मैं चला लाऊँ ?"

"हाँ, पहले चाय ही पिएँगे। पर तुम बैठो, मैं बनाकर लाती हूँ।"

"नहीं मम्मी, मैं लीना के साथ आकर आपकी रसोई में चाय बना सकती हूँ, अकेले क्यों नहीं ?"

"मेरा यह मतलब नहीं था पगली, मैंने सोचा, तुम थकी होगी, इसलिए कहा। अब मैं नहीं, तुम ही बनाओगी। जाओ, बनाओ, मैं नाश्ता निकालती हूँ। सीधी आफिस से आ रही हो न, भूख लगी होगी।"

"धन्यवाद। मेरी अच्छी मम्मी।" कहते हुए लता ने मम्मी के गले में बाँहें डाल दीं। इससे मम्मी का भी गला भर आया, आँखें नम हो आईं। पर लता यह देखने के लिए या भरे गले में कुछ सुनने के लिए वहाँ नहीं थी। गलबाहियों से मुक्त होते ही वह रसोईघर की तरफ भाग ली थी, जैसे लीना की अनुपस्थिति में मम्मी को अधिक निकट पाकर उसके हाथ में कारूँ का खजाना लग गया हो और इसके साथ ही उसके पैरों में पहिए और हाथों में पंख लग गए हों।

पर जब लता चाय की ट्रे लिए लौटी तो मम्मी को कुछ उदास बैठे देख उसके पहिए, पंख गायब हो गए, "क्यों मम्मी, क्या मैं भी आपकी

"यह बहुत अच्छा प्रश्न उठाया तुमने आज, जो पहले ही उठा लिया जाना चाहिए था। इसके लिए यह तो तुम जानती ही हो कि हादसे हर लड़की के साथ नहीं घटते। अच्छी लड़कियो के साथ तो इनकी सम्भावना नगण्य ही रहती है। अधिकाश घटने वाले हादसो के पीछे अक्सर कोई कारण होता है—लड़की की कोई कमजोरी, जैसे किसी लड़के की पहली हरकत पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न कर चुप लगा जाना और इस तरह अपनी मौन स्वीकृति प्रदान करना। प्रतिक्रिया से मेरा मतलब हर छोटी-मोटी बात मे हगामा खड़ा करना नही, न गाली-गलौज कर या थप्पड़ मार, जूता चलाकर अकारण किसी को इस कदर बेइज्जत करना कि वह बदले पर उतर आए। हो सकता है, लड़की को कोई गलतफहमी हुई हो या लड़के का इरादा बुरा न हो, महज उसका विनम्र प्रस्ताव हो। तब विनम्रता से ही सच्चा जवाब दिया जा सकता है। इरादे पर शका होने पर भी उसकी उपेक्षा की जा सकती है, अवसर को टाला जा सकता है कि वह स्वय ही समझ जाए। कई बार अच्छे निर्दोष लड़के भी अकारण बेइज्जत हो या लड़कियों द्वारा केवल मजा लेने के लिए उनकी खिल्ली उड़ाए जाने पर अपनी भलमनसाहत छोड़ बदले की भावना से गलत हरकतो पर उतर आते हैं और इसमें उनका साथ देते है, ऐसे अवसर की तलाश मे रहने वाले गलत किस्म के लड़के। तो अपनी ओर से ऐसा मौका ही क्यो दिया जाए कि ऐसी नौबत आए।

"या दूसरे किस्म की कमजोरी प्राय यह होती है कि पहले तो प्रयोग के तौर पर लड़किया उस सम्बन्ध मे रुचि लेने लगती है और घर वालो को पता चलने पर या पकड़ी जाने पर साहसहीनता का परिचय दे, अपने कथित (हा, ये प्रेमी अधिकतर कथित ही होते हैं क्योकि हर विपरीतलिंगी आकर्षण को प्रेम समझ लिया जाता है और यह स्थिति प्राय अस्थाई ही होती है) प्रेमी पर जबरदस्ती करने या जबरदस्ती पीछा करने का आरोप लगा, उसे बेइज्जत कर देती हैं, पिटवा तक देने मे सकोच नहीं करती। तब क्या वह दोषी या निर्दोष लड़का हर मामले मे चुप लगा जाता है? अक्सर यौन-हिंसा के मामलो के पीछे कोई न कोई ऐसी प्रेम कहानी ही होती है, जिसमे प्रेमी का [illegible]

घर वालों के भय से कदम पीछे हटा लिए गए। अब आज के जमाने में हर लड़का मजनूं बनकर प्रेमिका के पीछे रोने नहीं बैठ जाएगा, न ही दार्शनिक अंदाज में अपने प्रेम का उदात्तीकरण करके चुप बैठकर प्रेमिका के लिए मन ही मन में दुआएँ माँगता हुआ अपने प्रेम पर कुरबान हो जाएगा। कुछ तो बदले पर उतारू होंगे ही, विशेष रूप से अपराधी प्रवृत्ति के लड़के, जिनके लिए प्रेम का जाल फैला, लड़कियों से खिलवाड़ करना फैशन या मर्दानगी का प्रदर्शन या महज शगल ही होता है। तो यह मान कर चलना चाहिए कि अपहरण, बलात्कार और ब्लैकमेलिंग के पीछे अक्सर ऐसी प्रेम और बेवफाई की कथित कहानियाँ होती हैं या अपमान पर बदले की कार्यवाही अथवा कोई व्यक्तिगत या पारिवारिक रंजिश। इसलिए आगा-पीछा देखकर मर्यादा में चलने वाली लड़कियों के लिए अकारण खतरे के अवसर कम ही उपस्थित होते हैं। अत. अकारण भयभीत रहने में कोई तुक नहीं।"

"लेकिन ?"

"हाँ, मैं तुम्हारे इसी लेकिन पर आ रही हूँ। तुम्हारा आशय आज के आम असुरक्षित हो आए हालात से है न? पहले किसी साम्प्रदायिक दंगे, युद्ध जैसी असामान्य स्थितियों में ही असुरक्षा महसूस की जाती थी, जिस पर अकेले व्यक्ति का कोई न वश होता है, न उसपर इसका कोई दायित्व ही। अब ये असामान्य स्थितियाँ अक्सर शहरों, कस्बों, गाँवों का किसी भी समय टूट पड़ने वाले खतरों की शंकाओं से घेरने लगी हैं, तो उन खतरों से बचाव के उपाय भी सोचना ही होगा।

"वारदातें बढ़ रही हैं। असुरक्षा बढ़ रही है। इसके साथ ही बढ़ रही है, सरंक्षण की माँग। पर केवल सरकार या पुलिस के सरंक्षण से कुछ न होगा। न इस तरह के सरंक्षण में सबको बैठा रखना सम्भव ही है। शिक्षा, रोजगार क्षेत्रों में लड़कियों के आगे बढ़ते कदमों को अब सरंक्षण के नाम पर पीछे मध्य युग में नहीं लौटाया जा सकता। जरूरत है, इन कदमों में संकल्प की दृढ़ता और स्वयं रक्षण की शक्ति भरने की। नारी का सरंक्षण सरकार व समाज का दायित्व है, उसकी अपनी प्रतिष्ठा, अपनी अस्मिता, अपनी नैतिक शक्ति का सरंक्षण है। समाज में यह चेतना

जगाती है। समुदायों मे, समूहो मे, मुहल्लो मे स्वय सरक्षण के उपाय करने हैं और वक्त पर जान पर खेलकर भी समूह की, मुहल्ले की बहू-बेटियो की रक्षा करने वाली भारतीय परपरागत भावना पुरुषो मे, युवको मे, किशोरों मे जगानी है, जो काम घरो मे महिलाएँ हो, ऐसी प्रेरणा देकर, कर सकती हैं। पर समाज इस दायित्व मे पीछे हटता है तो उसे रूढ़िगत इन धारणाओं को भी बदलना होगा कि किसी लड़की के साथ जबरन शील-भंग के मामले मे कम से कम उसे दोषी तो न ठहराया जाए। उसकी जिन्दगी एक हादसे पर बर्बाद तो न की जाए। और लड़कियो को

उप-

हो

"यही तो मैं जानना चाहती हूँ मम्मी कि कैसे ?" लता की उत्सुकता अपने चरम पर पहुँच चुकी थी।

"इसके लिए कोई बँधे-बँधाए नियम तो नही गिनाए जा सकते। जैसा वक्त हो, अवसर हो, जैसा खतरा हो, उसी अनुसार सूझ-बूझ से, साहस से काम लेना होगा। इसके लिए पहली शर्त है, प्रत्युत्पन्न मति यानि तुम्हारी समझ की भाषा मे 'प्रेजेंस आफ माइंड' और साहस कि हम अपना सन्तुलन खोए बिना, तुरन्त बचावी उपाय सोच सकें। इसके बिना तो कैसा भी प्रशिक्षण हो, बेकार होगा।"

"प्रशिक्षण ?"

"क्यों क्या तुमने लीना के साथ 'जूडो' का प्रशिक्षण नही लिया था ?"

"नहीं मम्मी, मैंने जूडो का नाम अवश्य सुना है, जानती नहीं कि यह क्या है ? कैसे होता है ? कहां होता है ?"

"हां, शायद लीना को जब मैंने भेजा था जूडो सीखने के लिए, तब तुम उसके सम्पर्क मे नही आई थीं। तब वह कालेज नही गई थी, मात्र ग्यारह साल की थी।" मम्मी ने याद करके बताया।

"इसका मतलब है, हमारे शहर में इसकी व्यवस्था काफी दिनों से है ! मैं ही इससे बेखबर रही। दरअसल पढ़ने घर वालो के इतने बन्धन

थे कि न कभी अकेले घर से जाने का अवसर मिला, न इस तरह अपनी सुरक्षा आप करने का ख्याल आया। अब तो रोज ही सुबह-शाम घर से दफ्तर आना-जाना रहता है। सर्दियों में बस से लौटते अक्सर अंधेरा भी घिर आता है और कभी-कभी तो अकेले सुनसान गली, सड़क से भी गुजरना होता है। ऐसे में ये रोज-रोज की वारदातों की खबरें ! तो इस तरह के ख्याल आना स्वाभाविक ही है। क्या अब भी मैं जूडो प्रशिक्षण ले सकती हूँ ? कहाँ होता है यह ? किस तरह ? कृपया बतलाएँगी मम्मी ?"

लता की जिज्ञासा देख मम्मी ने उसे बताया, "आत्म-रक्षा की जापानी पद्धति है यह, जिसे आज हर छात्रा, हर कामकाजी युवती के लिए सीखना उपयोगी होगा। लीना ने सीखा था, तब 'अखिल भारतीय महिला परिषद्' की स्थानीय शाखा ने एक शिविर का आयोजन किया था। अब तो बहुत-सी संस्थाओं में और क्रीडा-गृहों में इस प्रशिक्षण की व्यवस्था है। पता लगाओ, शाम की कक्षाएँ कहाँ लगती हैं ? नहीं, तो कभी कुछ दिन की छुट्टी लेकर भी सीख सकती हो। पन्द्रह दिन का प्रशिक्षण ही काफी होगा। शुल्क नाममात्र का ही है, महिला संस्थाओं में। और सामग्री की कुछ जरूरत है ही नहीं। बस चुन्नी या साड़ी कमर में खोंसो और भिड़ने के लिए तैयार।"

लता को हँसी आई, "इसका मतलब है, हमें लड़ाकू बनना है ?"

"जरूरी नहीं। 'जूडो' का अर्थ है, शारीरिक दृष्टि से कमजोर पक्ष का अपने से ताकतवर पक्ष से सामना होने पर आत्मरक्षा की तकनीक। एक कमजोर लड़के को भी अपने से ताकतवर दुश्मन लड़के या गुट में अपने बचाव के लिए यह तकनीक सीखनी होती है कि कैसे वह समय पर अपने से बलवान को पटखनी देकर उससे अपनी रक्षा कर सके। अतः यह प्रशिक्षण केवल लड़कियों के लिए ही नहीं है। यह अलग बात है कि आज लड़कियों को भी इसे सीखने की जरूरत आ पड़ी है। शारीरिक दृष्टि से लड़कियाँ लड़कों से प्रायः कमजोर और कोमल होती ही हैं और पाला अधिकतर लड़कों से ही पड़ता है। इसलिए यह उनके लिए अधिक उपयोगी है कि कम से कम तब तक वे अपनी रक्षा अवश्य कर सकें, जब तक कि उनकी आवाज पर बाहर से सहायता जुटे। [illegible]

समय चोट से अपना बचाव करने की जो तकनीक सिखाई जाती है, वह वैसे भी किसी दुर्घटना में घिरते समय बचाव के काम आएगी, कम से कम गम्भीर चोट से बचाव जरूर करेगी। फिर इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि प्रशिक्षित लड़की में निर्भयता बनी रहेगी कि समय पर वह अपना बचाव कर सकेगी; सामने ऐसी स्थिति देखकर उसके हाथ-पैर नहीं फूल जाएँगे कि हाय, अब क्या होगा? या वह भयभीत हो रोने नहीं बैठ जाएगी। आज जरूरत है, जो लड़की सीखे, वह अपनी साथिनों को भी सिखा दे कि सबमें आत्मविश्वास और साहस का संचार हो। वैसे जान-बूझकर खतरा मोल लेने में कोई तुक नहीं। आप लोगों को प्रायः साथ-साथ ही आना-जाना चाहिए, पर अकेले निकलने पर हिम्मत बनी रहे, इसके लिए यह आत्मरक्षा-प्रशिक्षण भी ले ही लेना चाहिए। अब तुम सीखने के बाद आकर बताना कि कैसी लगी, अपने से ताकतवर को पटखनी दे सकने की यह तकनीक? प्रशिक्षण में तुम्हें ताकतवर लड़कों से ही भिड़ाया जाएगा, योग्य प्रशिक्षक के निर्देशन में।"

"सच मम्मी? फिर तो बड़ा कठिन होगा न यह प्रशिक्षण?"

"नहीं री, वे लड़के लोग तुमसे सचमुच थोड़े ही न भिड़ेंगे। वे तो सहपाठी होंगे, सहयोगी। बस अभिनय होगा लड़ने का, जैसे नाटक में लड़ाई का सीन हो। जिन्दगी में कहाँ, कब, किसको जरूरत पड़ती है, किसको? पर जरूरत पड़ने पर ही तो सैनिक युद्ध अभ्यास नहीं करते। फिर यह अभ्यास तो मात्र अपने में साहस और आत्मविश्वास भरने के लिए है कि आप समय पर भयभीत होकर ही हथियार न डाल दें, मुकाबला भी करें। यह आत्मविश्वास और यह साहस यों भी तो हमेशा काम आएगा—किसी भी तरह की विपत्ति में धीरज न खोने से, राह चलते किसी भी ... किसी चोट से अपना बचाव करते हुए। अब

अमृतसर की एक महिला ने दरवाजे की घंटी बजने पर जब जरा-सा झाँककर देखा कि बाहर कौन है, तो सामने खड़े एक उग्रवादी के हाथ में पिस्तौल दिख जाने पर उसने तुरन्त मुट्ठी भर मिर्चें उसकी ओर उछाल दीं। वह चिल्लाया और पीछे छुपा उसका साथी आगे आकर उसे भगा ले गया। पिसी लाल मिर्चें एक डिब्बी में डालकर उस महिला ने दरवाजे के पास ही रख छोड़ी थी। यह तरकीब समय पर उसके काम आई।"

"पंजाब के हालात देखते हुए उसने यह पूर्व प्रबन्ध करके रखा होगा। पर मानना होगा कि सबसे बड़ी तरकीब थी उसकी, उस समय धीरज न खोना और प्रत्युत्पन्न मति से काम ले पूर्व सोची तरकीब को समय पर काम में लाना। गांधीजी तो लड़कियों को कहा करते थे, और कुछ पास न हो तो सामने वाले गुंडे के मुँह पर थूक तो सकती हो। दाँतों से उसे काट कर तो अपने आपको छुड़ा सकती हो। जब तक वह सँभलेगा, बाहर से सहायता जुट जाएगी और वह भाग खड़ा होगा। पर आज के खतरनाक हथियारबन्द अपराधियों की गिरफ्त से छूटने के लिए 'जूडो' से भी अधिक जरूरत होगी, समय पर धीरज न खो, सूझबूझ से, युक्ति से काम लेने की। इसलिए जूडो-प्रशिक्षण तो लो ही, मन से हमेशा हर तरह के खतरे का सामना करने के लिए तैयार भी रहो। यह मानसिक तैयारी ही मुख्य है। 'जूडो' भी इसी में सहायक है।" और मम्मी ने इस चर्चा को समेटते हुए कहा, "बस अब इस चर्चा को आज यहीं रहने दें। मानसिक तैयारी का यह मतलब भी नहीं कि यही सब सोचते रहें। मानसिक परिपक्वता अपने आपमें हर समय के लिए एक मानसिक तैयारी है, जो [illegible] है ही।" और उन्होंने प्यार के साथ लता को विदा किया।

**